

७४-७५



नी
रा
ज
न



पं. दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय

हमारी प्रबन्धकारिणी-समिति

१.	श्री नरेन्द्रजीत सिंह जो बैरिस्टर	कानपुर	अध्यक्ष
२.	„ वीरेन्द्र पराक्रमादित्य	„	मन्त्री
३.	„ मधुसूदन वामन जी मोघे	दिल्ली	सदस्य
४.	„ लक्ष्मण श्रीकृष्ण जी भिड़े	लखनऊ	„
५.	„ गौरी शङ्कर जी भार्गव	कानपुर	„
६.	„ धीरेन्द्रजीत सिंह जी	„	„
७.	„ भाऊराव देवरस	नागपुर	„
८.	„ जगमोहन जी गर्ग	गाजियाबाद	„
९.	„ भूषणलाल जी धूपड़	कानपुर	„
१०.	„ राजेन्द्र सिंह जी (रज्जू भैया)	प्रयाग	„
११.	„ शिवशरण जी शर्मा	कानपुर	„
१२.	„ रामबालक जी मिश्र	„	„
१३.	„ चन्द्रपाल सिंह (प्राचार्य)	आगरा	„
१४.	„ शन्तनु रघुनाथ शेंडे (अध्यापक-प्रतिनिधि)		„
१५.	„ ओम शङ्कर (अध्यापक-प्रतिनिधि)		„



卐 ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ 卐
नी राजन ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ 卐
卐 ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ 卐



(वार्षिक - पत्रिका)

१९७४-७५

द्वितीय पुष्प



संरक्षक	—	श्री चन्द्रपाल सिंह (प्राचार्य)
प्रधान सम्पादक	—	ओम शङ्कर
सम्पादक	—	हेमन्त कुमार दीक्षित 'विश्वबन्धु'
छात्र-सम्पादक	—	शशि शर्मा, अजीत पाण्डेय
	—	नवनीत अग्रवाल
	—	अनित कुमार
सज्जाकार	—	आनन्द प्रसाद वर्मा



पं० दीनदयाल उपाध्याय सनातन धर्म विद्यालय
का न पुर

अनुक्रम

क्रमांक	शीर्षक	विषय	रचयिता	पृष्ठांक
१.	वन्दे त्वां	(प्रार्थना)		१
२.	नीराजकों से	(लेख)	चन्द्रपाल सिंह प्राचार्य	२
३.	सम्पादकीय	(„)	प्रधान सम्पादक	३
४.	तुलसी	(कविता)	श्री ओम शङ्कर	४
५.	दो गीत-पृष्ठ	(„)	श्री गोविन्द नारायण मिश्र 'शशि'	६
६.	दो गीत-श्रद्धांजलियाँ	(„)	चि० शैलेन्द्र दीक्षित, नवम 'ख'	८
७.	राष्ट्र और श्रम	(„)	चि० आनन्द मिश्र दशम	१०
८	सुन लो मेरे भी उद्गार	(„)	चि० राघवेन्द्र कुमार, दशम	११
९.	हमारी माता भारत-माता है	(„)	„ महेश तिवारी, अष्टम 'क'	१२
१०.	भारत भाग्य जगायेंगे	(„)	„ भूपेन्द्र मिश्र, नवम 'ख'	१३
११.	मातृ-भूमि की रक्षा	(„)	„ आलोक गुप्त, षष्ठ 'ख'	१४
१२.	हम सभी रामन बनें	(„)	„ संजय मिश्र, सप्तम 'क'	१५
१३.	जिस देश में गंगा बहती है	(„)	„ ख्यासी यांगफो, नवम 'ख'	१६
१४.	एक बार हिम्मत भर कर लें	(„)	„ आशुतोष शर्मा, सप्तम 'क'	१७
१५.	हम आकाश झुका सकते हैं	(„)	„ संजय गर्ग, अष्टम 'क'	१८
१६.	राष्ट्र-यज्ञ	(नाटक)	„ ओम शङ्कर	१९
१७.	रूढ़ियों के अँधेरे	(„)	चि० चाँद सेठ, दशम	२४
१८.	बूजी	(परिचयात्मक लेख)	„ शशि शर्मा, „	२८
१९.	और मैं उनको रोकने में सफल हो ही गया	(रिपोर्ताज)	„ अनित कुमार, „	३१
२०.	खिलजी रुक क्यों गए ? आगे बढ़ो	(काल्पनिक तथ्य)	„ नवनीत अग्रवाल, सप्तम 'क'	३३
२१.	फाँसी के तख्ते से	(एक दस्तावेज)	„ मदन पासी, षष्ठ 'ख'	३४
२२.	नौकरी	(कहानी)	„ दुर्गेशमाधव अवस्थी, नवम 'क'	३५
२३.	परमाणु-संरचना	(वैज्ञानिक लेख)	„ विनीत देवरा, नवम 'ख'	३७
२४.	अन्तरिक्ष में मानव	(„)	„ विनोद अग्रवाल, नवम 'क'	३९
२५.	डॉ० होमी जहाँगीर भाभा	(„)	„ शैलेन्द्र दीक्षित, नवम 'ख'	४२
२६.	अंधी शिक्षा और लक्ष्यहीन विद्यार्थी	(निबंध)	„ आनन्द मिश्र, दशम	४५
२७.	प्रचीन भारत में विज्ञान	(निबंध)	„ नवीन चन्द्र „	४७
२८.	नाभिकीय उर्जा	(वैज्ञानिक लेख)	„ जितेन्द्र कुमार, दशम	४९
२९.	गाँधी : मेरा निजी मूल्यांकन	(कविता)	„ हेमन्त कुमार दीक्षित	५२
३०.	वार्षिक-आख्या (१९७४-७५)		प्राचार्य	५५
३१.	दशम कक्षा के प्रशिक्षार्थी			५७
३२.	गुरुजन, जो सतत सचेष्ट हैं			५८



“वन्दे त्वां भूदेवी”

वन्दे त्वां भूदेवीं आर्य मातरम् ।
जयतु जयतु पद युगलं ते निरन्तरम् ॥

शुभ्र शरद् चन्द्र-युक्त चारु यामिनीम् ।
विकसित-नव-कुसुम-मृदुल-दाम शोभिनीम् ।
मन्दस्मित-युक्त वदन मधुर भाषिणीम् ।

सुजलां, सुफलां, सरलाम्,
शिव वरदां, चिर सुखदाम्,
सुकुलरदां, आर्यमातरम् ॥ वन्दे ०॥१॥

धर्मस्त्वं, शर्मस्त्वं, त्वं यशोबलम्,
शक्तिस्त्वं, भक्तिस्त्वं, कर्मचाखिलम्,
प्रतिसदनं प्रतिमाते त्वं महाफलम्,

धरणीं, भरणीं, जननीम्
कवि प्रतिभां, मत्सुलभाम्,
जगदम्बां, राष्ट्रमातरम् ॥ वन्दे ०॥२॥



नीराजकों से—

अपने पिछले संबोधन में मैंने संकेत किया था— 'कस्में देवाय हविषा विधेम ?' अब प्रश्न उठता है उस देवता का हम नीराजन किस प्रकार करें। बहुत संभावना है कि मेरा यह संबोधन तुम लोगों से अन्तिम ही हो।

स्मरण रहे कि राष्ट्र देवता के नीराजकों की एक अनन्त गौरवशालिनी शृंखला की तुम भी एक कड़ी हो। कड़ियों की संख्या अनन्त होने से तुम्हारा अपना महत्व कम नहीं हो जाता; क्योंकि शृंखला की प्रत्येक कड़ी उसकी शक्ति का मापदण्ड होती है, उसकी भूमि भी अपनी होती है। यह स्मरण ही कितना रोमाञ्चक एवं प्रेरणादायी है कि तुम्हारे पूर्ववर्तियों में ध्रुव और प्रह्लाद, राम और कृष्ण, प्रताप और शिवा, दयानन्द और विवेकानन्द, सावरक और भगत सिंह, गांधी और गोलवलकर जैसी विभूतियाँ रही हैं। उन सबने अपने ढंग से देवता का नीराजन किया है। नीराजन का महत्व उसकी साङ्गोपाङ्ग विधि तथा अपित्त सामग्री के वैविध्य और मूल्य पर निर्भर नहीं है। देवता तो भाव का भूखा होता है। राम ने शबरी के जूठे बेर खाये। कृष्ण ने विदुर के घर साग बड़े स्वाद से खाया। तुम भी भारत माँ का नीराजन किस तन्मयता, हृदय की शुद्धता एवं भाव-विभोरता से करते हो—इस पर ही उसका मूल्य आँका जायेगा। जीवन के किसी भी क्षेत्र में तुम क्यों न हो, छोटे से छोटा अथवा बड़े से बड़ा कार्य तुम्हें क्यों न सौंपा गया हो, यदि तुम इसे पूर्ण निष्ठा के साथ अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर, राष्ट्र के हित को सर्वोपरि रखकर करते हो तो तुम मातृ-मन्दिर के सच्चे पुजारो हो, सच्चे नीराजक हो तथा तुमने अपनी गौरवमयी परम्परा को पूर्ण रूप से निभाया है—ऐसा समझा जायेगा।

ईश्वर करे तुम अपने जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करने में पूर्ण रूपेण सफल हो। शुभास्ते पन्थानः !

—चन्द्रपाल सिंह
(प्राचार्य)

प्रेरणा स्रोत-

पं० दीनदयाल उपाध्याय उपाख्य पंडित जी



प्रेरणा-सागर ! समर्पित पुष्प मेरे फिर तुम्हीं को.....

विद्यालय की संस्थापिका

स्व० श्रीमती सुशीला नरेन्द्रजीत सिंह उपाख्या बूजी



फिर से समर्पित ये सुमन.....

Editorial विद्यादेवी

नीराजन की द्वितीय आवृत्ति । बाह्य रूप में वही पत्र-पुष्प, धूप-दीप; किन्तु सर्वथा नया रूप, नये रंग, नवल गन्ध और अभिनव ज्योति । हो भी क्यों न हम सभी नित नयी सृष्टि के विधायक जो हैं ।

प्रथम अङ्क में हमने द्रोण, धौम्य और चाणक्य को ही दोषी ठहराकर आज के गुह्यों को झंकृत करने का एक प्रयास मात्र किया था । यह प्रयास केवल 'नीराजन' तक ही सीमित न रखकर व्यवहार-जगत के अर्जुन, आरुणि और चन्द्रगुप्तों के जीवन-क्रमों में भी उतारने का प्रयास किया है । प्रयास, मात्र प्रयास ही नहीं, एक सफल प्रयास ।

इन प्रयासों के अन्तर्गत ही हमने आज के किशोर आक्रोश को (पुरानी पीढी के प्रति) सही दिशा देने के लिए किशोर-भारती व बाल-भारती जैसी जीवन्त संस्थायें स्थापित कीं, जिनके अन्तर्गत विभिन्न महापुरुषों की जयन्तियां, कथा-कहानी एवं काव्य-लेखन प्रतियोगितायें, सुलेख-प्रतियोगिता, मशीनी उपकरण बनाने की प्रतियोगिता, भाषण, निबंध, कविता-पाठ, अन्त्याक्षरी एवं इसी प्रकार की अनेकविध प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्तियों को जागृत करने वाले कार्यक्रमों का आयोजन एवं प्रोत्साहन हेतु पुरस्कार आदि वितरण भी किया । इन सभी आयोजनों में आचार्यों का केवल वानप्रस्थी मार्ग-दर्शन ही रहा, इसमें 'हस्तक्षेप' बिल्कुल नहीं ।

इन्हीं प्रयासों के अन्तर्गत देश-दर्शन कार्यक्रमों का आयोजन भी अत्यन्त प्रेरणादायी सिद्ध होते रहे हैं । आचार्य और शिष्य मर्यादित भाव से कन्धे से कन्धा मिलाकर उन दुर्गम मार्गों एवं दुःसाध्य कर्मों को सरल करने में सफल होते देखे जा सकते थे, जिसकी आज के युग में कल्पना भी कठिन लगती है ।

छायाङ्कन, लक्ष्यभेद, सन्तरण आदि भौतिक विकासों के साथ ही आध्यात्मिक उन्नति हेतु सदाचरण-शिक्षण एवं उसका व्यावहारिक प्रयोग भी हमारी एक अनुपम उपलब्धि है ।

विभिन्न संस्थाओं में आयोजित निबंध लेखन, वक्तृत्व एवं कला प्रतियोगिताओं में भी हमारे आशादीपकों ने सर्वोत्कृष्ट एवं उत्कृष्ट स्थानों को प्राप्त कर हमारे उत्साहवर्द्धन में पूरा सहयोग दिया है ।

इसी प्रकार ऐसे अनेक कार्यक्रम एवं आयोजन हमारे द्वारा चलाए जा रहे हैं, जिनके परिणाम आज के इस निराशाजनक वातावरण में भी बड़े आशाप्रद प्रतीत हो रहे हैं । हमारे इस नीराजन में भी उन नीराजकों की सर्वथा मौलिक नहीं तो मधुमक्खी के शहद की भाँति मौलिकता एवं उसी की भाँति मधुरता का दावा रखने वाले रचना-उपचारों का परिचय प्राप्त कर विशेष आनन्दानुभूत न सही, फिर भी एक आशा, एक विश्वास तथा एक सन्तोष अवश्य प्राप्त होगा इसमें सन्देह नहीं ।

तुलसी

[विश्व-विश्रुत महाकवि 'तुलसीदास एक व्यक्तित्व और कृतित्व' पर संक्षिप्त, सारयुक्त एवं मौलिक अभिव्यंजनाओं की एक प्रेरणा-प्रद झलक ।]



तुम अन्धकार के दीप, दिवस की प्रभाकांत,
अज्ञान और जड़ता में जैसे सूर्यकान्त,
तुम ज्ञान सिन्धु, धीरज के थे साकार शैल,
अगणित प्रकाश की किरणें तुम में गईं फैल ॥१॥

छा गया तिमिर जड़ता का जब प्रत्येक हृदय,
विकराल रूप धर आ धमका साक्षात् प्रलय,
कोना - कोना उत्तप्त हो उठा धरती का,
आँसू तक सूख गया बेचारी करती क्या ?
आँखों में अंगारे माथे पर कुचित बल,
थी देख रही भारतमाता बेटे निर्बल ॥२॥



जब शौर्य विलासी होकर सोता था दिन में,
पुरुषार्थ बन गया था बन्दी मद-उपवन में,
संगठन, धैर्य, कौशल विक्रम थे चूम रहे—
चरणों को वैभव के, पागल से घूम रहे ।
अनदेखी, अनचाही सुख की सुविधाओं पर,
जब पौरुष ने अनमन होकर मनुहारों की,
थककर विश्राम लगा करने जब सृष्टि-हृदय,
आतप ने जब की दिन में चाह बहारों की ॥३॥

जब सरस्वती ने पकड़ लिये लक्ष्मी के पद,
वन्दना लगा करने सरिताओं की, जब नद,
सहने की सीमा लाँघ गई जब घरती माँ,
फिर से मुखरित हो उठी, मौन प्रस्तर प्रतिमा,
जन्मा जागृत-सुत तुलसी फिर से एक बार,
आ गई तपन में फिर मानों शीतल बयार,
झकझोरा उसने, कहा 'राम तुम सोते हो',
विष-बीज स्वयं के हाथों से ही बोते हो,



तुम उठो लक्ष्मण, भरत, सम्हालो हर कोना,
 विश्वास भरो धिक्कारो धरती का सोना,
 हनुमान ! उठो सोने की लंका राख करो,
 अंगद ! तुम पैर जमा दो अपनी साख धरो,
 पौरुष को कामाधीन किया दशरथ तुमने ?
 तुम शम्बरारि थे इसको कैसे भूल गये ?
 विक्रम को करके दास घोर अपराध किया,
 इसलिये राम बढ़ते हैं अब, तुम मरो भले ॥४॥



शारदे ! कूटनीतिक चालें चलनी होंगी ।
 ऐ ! हंस चाल तेरी भी कुछ बंकिम होगी ॥
 यह समय जागरण का है अब है निशा नहीं,
 हर अन्तस्तल भटका है मिलती दिशा नहीं,
 संदेश भर गया तुलसी का रामादल में,
 सज गई सैन्य वीरों की फिर से पल भर में,
 तन्द्रिल तरुणाई ने फिर से आँखें खोलीं,
 कलियों ने मल ली माथे पर जय की रोली ॥५॥

जग गये बांकुरे पल भर में जो सोये थे,
 उत्साह भर उठा नयनों में जो रोये थे,
 मानस भर उठा तरंगों से शुचि अमृत की,
 तुलसी का बिरवा झूम उठा कह 'जय हर की ।'
 चल दिया ज्ञान-पथ से भक्ति क सागर को,
 अवगाहन जल में किया, रत्न भर गागर को,—
 फेंका, बुहार कर घन्य हो गया जग सारा,
 यह सूख सकेगी क्या तुलसी की यश-धारा ? ॥६॥



—ओमशङ्कर



दो गीत-पृष्ठ

[शुद्ध कवित्व में लिपटी हुई आशा-रश्मियाँ निश्चय ही पाठकों के भावुक मनों का एक संवल सिद्ध होंगी ।]

हम इस मिट्टी से नये सृजन का रूप सँवारा करते हैं,
नव निर्माणों से हम धरती के चित्र उतारा करते हैं ।



हम आर्यों की संतान रहे नित,
हम सत्पथ के अनुयायी ।
जो तम में भटक रहे थे,
उनको हमने जाकर राह दिखाई ।

हमने अपना कृछ खोकर ही
औरों को पाना सिखलाया ।
जो घुट-घुट कर मरते थे
हमने उनको जीना सिखलाया

हम नव प्रकाश में नये क्षितज के छोर निहारा करते हैं ।
हम इस मिट्टी से नए सृजन का रूप सँवारा करते हैं ॥



अनुभव की स्याही घोल धरा के कागज पर
हम जीवन का इतिहास लिखा करते हैं ।
हम बैठ श्मशानों के तट पर संसृति को,
नित नई प्रेरणा का विश्वास दिया करते हैं ।

हम महाकाल को आमंत्रण की भीख सदा देते हैं,
निर्मम आहों में प्राणों को तकलीफ सदा देते हैं ।
हम इस धरती पर नील गगन का प्यार उतारा करते हैं,
हम इस मिट्टी से नए सृजन का रूप सँवारा करते हैं ।



हमने आदर्शों की पृष्ठभूमि में, मानवता की छाप लगाई ।
बुनियादों के लिए मूल आधारों, की आवाज उठाई ।
हमने इस युग की मौन चेतना, के अधरों को खोला है ।
हमने पाषाणों की काया में जाकर, प्यार टटोला है ।

हम नए स्वरो से नव युग की चेतना पुकारा करते हैं ।
हम इस मिट्टी से नए सृजन का रूप सँवारा करते हैं ।

हम गति हीनों को साँसो की रफ्तार दिया करते हैं ।
संकीर्ण दायरों को युग का विस्तार दिया करते हैं ।
परिवर्तन को हम नित श्रम का उपहार दिया करते हैं ।
हम निराकार को जीवन का आकार दिया करते हैं ।



हम युग तृष्णा के अधरों पर नित नई शान्ति की प्यास उभारा करते हैं ।
हम इस मिट्टी से नए सृजन का रूप सँवारा करते हैं ।

मैं अपना सब कुछ खोकर भी
तब गीत किसी के गाता हूँ

प्राणों की मौन विकलता जब,
साँसों के बीच उभरती है ।
करुणा मन की गहराई में,
कुण्ठित हो आहें भरती है ।



अनुभूति सहचरी बन कर जब,
भावों को स्वर देती अपना ।
मेरे मन के वीरानों में,
जल जाता एक मादक सपना ।

पीड़ा का प्रबल प्रवाह जभी,
आँखों में बहने लगता है ।
कुछ अपनों का अपना पन ही,
अपनों को खलने लगता है ।



परिवर्तन के उस प्रतिक्षण में,
भाषा के भाव जगाता हूँ ।
मैं अपना सब कुछ खोकर भी
तब गीत किसी के गाता हूँ ।

मानव की तरुण चेतना जब, यादों के बीच भटकती है ।
बाणी की मौन कराह विकल, होठों के बीच सिसकती है ।
इतिहास अधूरी यादों के, जब गीत मचल दुहराता है ।
युग धूमिलसी आकृतियों से आकार नया दे जाता है ।



तूलिका कणों के रंगों में, जब बिखरे भाव संजोती है ।
बेसिक उच्छ्वासों को पीड़ा, रीती आँखों से पीती है ।
जीवन के अधियारे पथ पर, भावों के दीप जलाता हूँ ।
मैं अपना सब कुछ खोकर भी तब गीत किसी के गाता हूँ ।

कुंठा इन बोझिल आँखों में, जब दुख का सागर भरती है ।
अन्तर की करुणा पीड़ा का, श्रृंगार नया नित करती है ।
साँसों की इन सीमाओं पर, जब उलझन का पहरा होता ।
एक टीस उभर कर मिट जाती, हर जख्म और गहरा होता ।



जब बाणी की मंथर गति में गीतों का स्वर जम जाता है ।
इन प्रश्वासों के गुंफन में, जब मलयानिल थम जाता है ।
अनजान दिशाओं में बहकी, यादों के छोर मिलाता हूँ ।
मैं अपना सब कुछ खोकर भी तब गीत किसी के गाता हूँ ।

गोविन्द नारायण मिश्र 'शशि' आचार्य

दो गीत-श्रद्धांजलियाँ

—शैलेन्द्र कुमार दीक्षित ६

[“असीम संवेदना, घनीभूत पीड़ा, अथाह भावाकुलता सब केन्द्रित हो गई उस मार्मिक दुर्घटना पर जिसने एक युग-पुरुष हमसे छीन लिया।”]

(१)

यह किस तरह की रात थी,
यह किस तरह की बात थी ।
आज नींद कैसी थी,
कि सपने का माथा ठनक उठा ॥
चाँद का चरखा टूट गया,
आकाश के तारे छूट गये ।
घरती के काँपते हाथों से,
दीनदयाल को किसने छीन लिया ॥ (१)

इतिहास ने गहरी सांस ली,
वक्त ने सहम कर देखा ।
पूरब की काली आँख में,
सूरज का आँसू चमक उठा ॥
मन का एक महल था,
अचानक हलचल मच गई ।
यह आज का गीत कैसा था,
कि मेरे गले में अटक गया ॥ (१)

आसमान की चादर फाड़कर,
कोई कफन सी रहा है ।
यह किस फूल की लाश है,
कि सारा बाग रो दिया ॥
यह किस तरह का व्यक्ति था,
यह किस तरह का राज था ।
यह किस तरह का प्रेमी था,
कि सारा चमन शोकाकुल हुआ ॥

(८)

एक चमकीला बिंदु माथे से मिट गया ।

एक बहुत बड़ा व्यक्ति दुनियाँ से चला गया ॥
काला हो गया आकाश, चन्दा मिट गया ।

देश का विकसित फूल सहसा मुरझा गया ॥
बढ़ते हुए व्यक्ति को, काल ने चबा लिया ।

एक बहुत बड़ा व्यक्ति दुनियाँ से चला गया ॥ (१)

दश के लिए आता हुआ सपना, अचानक टूट गया ।

वर्षों के बाद मिला कर्म-पुरुष, फिर छूट गया ॥
बनता हुआ इतिहास, बनते हुये बिगड़ गया ।

एक बहुत बड़ा व्यक्ति दुनियाँ से चला गया ॥
साँझ सूनी हवा सूनी, भटकाती है राहों को ।

जलता हुआ दीप, सहसा बुझ गया ॥
अग्नि का विमान उड़ा, भारी निनाद उठ गया ।

एक बहुत बड़ा व्यक्ति दुनियाँ से चला गया ॥ (२)

बढ़ता हुआ दीनदयाल, जल्दी चला गया ।

आप तो चले गये पर आपका नाम न गया ॥
लोगों को एक बार, फिर रुला दिया ।

एक बहुत बड़ा व्यक्ति दुनियाँ से चला गया ॥
इनकी बुद्धिमता से, देश खुश हुआ ।

इनकी आवाज से देश जग गया ॥
लेकिन ११ फरवरी सन् अरसठ को काल बुला ले गया ।

एक बहुत बड़ा व्यक्ति दुनियाँ से चला गया ॥



❖❖❖ राष्ट्र और श्रम ❖❖❖

—आनन्द मिश्र (दशम)

[अष्टाचार के पंक्त में अपादमस्तक डूबा राष्ट्र, गीत के माध्यम से भाववस्ति की करबट बबलता प्रतीत होता है]

रामराज्य का स्वागत करने
श्रम को आगे बढ़ना है ।
राष्ट्र-नींव के गठन हेतु
जीवन के पत्थर गढ़ना है ।
प्रातः समीरण खुशियों का जब
चले धुलें सारे ही कल्मष ।
अष्टाचार कुशासन भागे,
गाण्डीव से उठें जब धनुष ।
चहुँ दिशि छा जाये खुशहाली
दुख दारिद्र्य पड़े न दिखायी
गाँव-२ घर-२ में गूँजे
एक मन्त्र हम 'भाई भाई' ।
खेत - खेत में लहराती हों
श्यामल वर्ण शस्य की बालें
हर जन शक्ति - भक्ति भर झूमें
विदेशियों की चलें न चालें ।
यह सब कैसे होगा भाई ?
हमें परिश्रम करना होगा,
रामराज्य का स्वप्न सभी-
जन-जन के मन में भरना होगा ।
इसीलिये आओ सब मिलकर
श्रम का स्वागत करें आज हम,
देश भर उठे खुशहाली से
श्रम का स्वागत करें सभीजन ।

“भारत - भाग्य जगाएँगे”

—भूपेन्द्र कुमार मिश्र

कक्षा - नवम (ख)

‘विद्यालय की लघु-काया में उच्चादर्शों की विराट् आत्मा का दर्शन कराने वाला एक सशक्त गीत-हस्ताक्षर !”

दीन दयाल विद्यालय अपना,
अनुपम दीप महान् है,
दीन दयाल जी के हम बच्चे,
भारत के अरमान हैं,
दीन दयाल विद्यालय अपना,
अनुपम दीप महान् है ॥१॥

उच्चादर्शों की सत् शिक्षा
भारत के निर्माण की,
एक धर्मिता यहाँ मिलेगी
हिन्दू - हिन्दुस्थान की
कदम मिलाकर हर पग चलना
हम सबका अभिमान है
दीन दयाल विद्यालय अपना,
अनुपम दीप महान् है ॥२॥

पाठ यहाँ सिखलाया जाता
सदा एक मिल रहने का
मात-पिता-गुरु सेवा करना
प्रेम सहित दुख सहने का
शिक्षा का आदर्श यही है
विधि का यही विधान है
दीन दयाल विद्यालय अपना
अनुपम दीप महान् है ॥३॥

हम सब भैया कार्य करेंगे
भारत भाग्य जगाएँगे ।
युग के दोष मिटा डालेंगे
माँ का सुयश बढ़ाएँगे ।
बढ़ते जाने का नारा यह
शुभ कर्मों का ज्ञान है
दीन दयाल विद्यालय अपना
अनुपम दीप महान् है ॥४॥

‘मातृ भूमि की रक्षा’

—आलोक गुप्त
षष्ठ (ख)

[बाल-मन की साहसिक भावाभिव्यक्ति]

बन्दा गुरु की बन खड्ग धार,
राणा के कर की बन कृपाण ।
रणचण्डी का आंगन क्षण में,
हम नर मुण्डों से भर देगे ॥

चाहे काल खड़ा हो सम्मुख,
धैर्य हम नहीं खोयेंगे ।
सीमा तक न आने देंगे,
उनको मार भगायेंगे ॥

चाहे हम बन्दी बन जायें,
हम कुछ न उन्हें बतायेंगे ।
दुश्मन के सम्मुख कभी नहीं,
हम अपना शीश झुकायेंगे ॥



“हम सभी रामन बनें”

—संजय कुमार मिश्र
सप्तम (क)

रामन को शत-शत नमन
आओ चलें करें मनन

पार्वती अम्माल का सुत,
गुल सुनहरा बन रहा था ।
ज्ञान और विज्ञान में वह,
नोबुल विजेता बन रहा था ॥

नहीं थकते थे कभी वे,
नई बातें खोजने में ।
यहाँ तक गुरु वृन्द थकते,
चन्द्र को पहचानने में ॥

सरस्वती की साधना ही,
साध्य उनकी बन चुकी थी ।
नील नभ और नील सागर,
दृष्टि उनकी गड़ चुकी थी ॥

हम सभी रामन बनें,
कर्मठी खोजी बनें ।
खुद बढ़ें प्रेरक बनें,
उनको नमन, उनसे बनें ॥





जिस देश में गंगा बहती है.....

ख्यासी कुमार यांगफो नवम 'ख'

[अरुणाचल-वासी एक सहृदय बाल कवि के स्वाभाविक भावनापूर्ण उद्गार]

जिस देश में गंगा बहती है
उस देश में सूखा क्यों है ?
जिस देश में हरियाली खेती है
उस देश में भूखा क्यों है ?
जिस देश में गंगा बहती है
उस देश में सूखा क्यों है ?

जिस देश में गाँधी, गौतम हुए
उस देश में हिंसा क्यों होती ?
जो देश विश्व गुरु कहलाया
उस देश में विद्या क्यों रोती ?

जिस देश में राम और कृष्ण हुए
उस देश में होता क्यों अधर्म ?
जिस देश में हुए विवेकानन्द
उस देश में क्यों है निष्ठुर कर्म ?



एक बार हिम्मत भर कर लें.....

-आशुतोष शर्मा (सप्तम क)

[काव्य-लेखन प्रतियोगिता में प्रथम रचना ।]

एक बार हिम्मत भर कर ले,
हम आकाश झुका सकते हैं ॥

वैरो की खून की बूँदों से,
धरती में रक्त बहा सकते हैं ॥

आसमान के तारों को ले,
इस पृथ्वी पर आ सकते हैं ॥१॥

एक बार हिम्मत भर कर लें,
हम सुभाष बन सकते हैं ॥

हिम्मत के पथ पर आगे चल
चन्द्रशेखर आजाद बन सकते हैं ॥२॥

एक बार हिम्मत भर कर लें,
हम अशोक बन सकते हैं ।

राष्ट्रपिता गाँधी गौतम
जैसे महान कहला सकते हैं ।

एक बार हिम्मत भर कर लें,
हम आकाश झुका सकते हैं ॥३॥

['बाल-भारती' काव्य-लेखन-प्रतियोगिता में पुरस्कृत एक सशक्त बाल-अभिव्यक्ति ।]

—संजय गर्ग अष्टम 'क'

एक बार हिम्मत भर कर लें,
हम आकाश झुग सकते हैं ।
एक बार जीवन को दे दें,
हम देश आजाद करा सकते हैं ।
क्या ऐसे पंथी नहीं हुये,
जो तूफानों में भी चलते ।
केवल इस हिम्मत के बल पर,
जो अडिग नहीं पथ से टलते ।
उनकी इस हिम्मत को सुनकर,
लोग गीत गाते रहते हैं ।
एक बार हिम्मत भर कर ले,
हम आकाश झुका सकते हैं ।
एक बार जीवन को दे दें,
हम देश आजाद करा सकते हैं ।
देखो आज प्रताप-व्रती को,
सहते रहे अन्त तक दुःख ही ।
ले आत्मिक विश्वास चिरन्तन,
त्याग दिया जीवन का सुख भी ।
उनकी तप-निष्ठा के कारण,
(अब) घर २ चित्र सजा करते हैं ।
एक बार हिम्मत भर कर लें,
हम आकाश झुका सकते हैं ।
एक बार जीवन को दे दें,
हम देश आजाद करा सकते हैं ।
क्या वीर हकीकत नहीं हुआ,
जो बना धर्म-दीवाना था ।
दृढ़ निश्चय के कारण ही वह,
बन गया देश - परवाना था ।
उसके निश्चय के ही कारण,
हम उसे कभी न भुला सकते हैं ।
एक बार हिम्मत भर कर लें,
हम आकाश झुका सकते हैं ।
एक बार जीवन को दे दें,
हम देश आजाद करा सकते हैं ।

“हम आकाश झुका सकते हैं”

ॐ राष्ट्र-यज्ञ ॐ

—ओम शङ्कर

[लेखक की एक अप्रकाशित कृति 'युग-पुरुष आचार्य चाणक्य' का एक मासिक एवं अत्यन्त शिक्षाप्रद अंश]

पात्र परिचय

अलक्षेन्द्र—यूनान का एक महत्वाकांक्षी राजा (सिकन्दर)

यूडेमस—अलक्षेन्द्र का यूथप

चन्द्रगुप्त—आचार्य चाणक्य का प्रमुख शिष्य एवं भारत का भावी सम्राट

सिंहरण—चन्द्रगुप्त का सहपाठी एवं मालव गणराज्य का युवराज

जयादित्य शर्मा—आचार्य चाणक्य द्वारा शिक्षित एक समर्पित देशभक्त (एक भारतीय सिपाही)

[क्षुद्रक गणराज्य की राजधानी। अमावस की काली रात। दुर्ग के तीन ओर अलक्षेन्द्र का घेरा पड़ा है। दुर्ग का द्वार बन्द है। अलक्षेन्द्र और यूथप यूडेमस विचार विमर्श कर रहे हैं]

अलक्षेन्द्र :—यूडेमस ! आज ५ वां दिन है, किन्तु इस छोटे से दुर्ग को हम अभी तक नहीं तोड़ पाये। आज किसी न किसी प्रकार से इन क्षुद्रकों को मजबूर करना पड़ेगा कि वे अपने घोंसले से बाहर आयें।

यूडेमस :—अवश्य महाराज ! ऐसा ही किया जायेगा आज चारों ओर से दुर्ग घेर लिया जायेगा, और राजा पुरु के द्वारा प्रदत्त जुझारू हाथी फाटक तोड़ देंगे।

अलक्षेन्द्र :—यूडेमस ! विजय तो सुनिश्चित है; किन्तु जीवन में आज प्रथम बार मुझे लग रहा है कि किसी भीषण विपत्ति का सामना करना पड़ेगा।

यूडेमस :—महाराज ! विश्राम करें। लगता है आप थके अधिक हैं।

अलक्षेन्द्र :—(जोर देकर) विश्राम ! विजय के पूर्व सिकन्दर विश्राम करेगा। असम्भव। (नेपथ्य से हर हर महादेव का तुमुल घोष सुनाई देता है। अलक्षेन्द्र व यूडेमस उसी ओर ध्यान देने हैं।)

यूडेमस :—लगता है कोई आक्रमण पीछे से भी होने वाला है।

यूडेमस :—(सोचते हुये) महाराज और तो कोई ऐसी शक्ति इस क्षेत्र में समझ में नहीं आती जो अग्रसर होकर सम्राट सिकन्दर महान् की विजय वाहिनियों से टकराने आये ।

अलक्षेन्द्र :—यूडेमस ! कुसमय में तिनका भी शूल की भाँति चुभने लगता है । (क्रुद्ध होकर) यह तुम लोगों के वापस लौट पड़ने का ही परिणाम है । (पुनः हर-हर महादेव का स्वर होता है)

यूडेमस :—महाराज ! अब क्या आज्ञा है ?

अलक्षेन्द्र :—अब भी सोचने की आवश्यकता है ? अब तो एक ही विचार, एक ही आचार, और एक ही व्यवहार । युद्ध, घोरयुद्ध, महायुद्ध । सेना को तुरन्त सचेत कर दो ।

(संकेत मिलते ही अलक्षेन्द्र की सेना में दुन्दुभी बज उठती है । सहसा एक मालव-दूत प्रवेश करता है । रक्षक उसे दूर पर ही रोक देता है । रक्षक परिचय-पत्र दूसरे सिपाही को दे देता है । सिपाही अलक्षेन्द्र के समक्ष प्रस्तुत होता है)

सिपाही :—जय हो सम्राट की ! (पत्र बढ़ा कर) मालव गणराज्य का दूत आया है ।

अलक्षेन्द्र :—तुरन्त प्रस्तुत करो ।

(सिपाही जो आज्ञा कहकर जाता है । दूत की तलाशी लेकर उसे अन्दर लाता है ।)

दूत :—(हाथ जोड़कर) जयशङ्कर की राजन् ।

अलक्षेन्द्र :—जयशङ्कर ! क्या काम है मालव-दूत ?

दूत :—सारा काम इस पत्र में ही लिखा है । (दूत पत्र आगे बढ़ा देता है । सिकन्दर लेकर पढ़ता है ।)

युद्धोद्धत वीर अलक्षेन्द्र,

मालव गणराज्य के प्रतिनिधि के नाते, अपने

विवेकशील सहयोगियों के आग्रह पर, मैं आपको यह आगाह करता हूँ कि अब तक जो कुछ किया, किया । अब अपनी बची शक्ति को सम्हालकर चुपचाप वापस जायें । अन्यथा ध्यान रखें कि अब भारत में एक भी शशिगुप्त, आंभीक, संजय और अश्वजित नहीं बचे हैं । परम सहिष्णु देश का निवासी होने के नाते ही आपको यह पत्र लिखकर सचेत कर दिया है, अन्यथा सीधे युद्ध-भूमि में भेंट करने की इच्छा थी ।

उत्तर की प्रतीक्षा में—

चन्द्रगुप्त मौर्य
(मालव-प्रतिनिधि)

अलक्षेन्द्र :—(क्रोधित होकर) दूत ! मेरे सामने से हट जाओ, वरना हो सकता है इस पत्र की प्रतिक्रिया तुमको ही झेलनी पड़े । अपने प्रतिनिधि से कह देना कि, सिकन्दर के लिये युद्धभूमि कोई अपरिचित जगह नहीं । मैं उनकी भेंट के लिये सहर्ष तैयार हूँ । (यूडेमस की ओर) नायक भेरी बजवा दो और प्रसारित कर दो मेरा आदेश कि इन क्षुद्रकों को परास्त करने के पश्चात् हमारा अगला कदम मालव-भूमि की ओर ही होगा और ध्यान रहे मालव-गणराज्य का एक बच्चा भी जीवित न रहने पाये ।

यूडेमस :—जो आज्ञा महाराज ।

(यूडेमस का प्रस्थान । नेपथ्य से दुन्दुभी-घोष)
(पट-परिवर्तन)

(क्षुद्रक-राज का दुर्ग-द्वार अभी बन्द है । पुरु के जुझारू हाथी मस्तकों पर तवा पहने 'हूलने' की तैयारी में हैं । क्रोधावेश में अलक्षेन्द्र स्वयं सेनापतित्व कर रहा है । सहसा पीछे से कुछ चुने हुये सैनिकों सहित चन्द्रगुप्त का प्रवेश । पूर्व दृश्य के समान ही पूर्ण सैनिक वेश में कुछ-कुछ रतनारी आंखों वाला चन्द्रगुप्त आज बड़े आकर्षक

व्यक्तित्व का लग रहा है। बुलन्द आवाज में ललकारता है।)

चन्द्रगुप्त :- (आगे बढ़कर) 'ठहरो !'

(पूरी टुकड़ी स्तब्ध रह जाती है। स्वयं सिकन्दर भी एक क्षण को थोड़ा झिझक उठता है। पुनः सम्मलकर गंभीरता से पूछता है।)

अलक्षेन्द्र :- कौन हो तुम ?

चन्द्रगुप्त :- मालव-प्रतिनिधि चन्द्रगुप्त मौर्य ।

अलक्षेन्द्र :- (एक-एक शब्द पर जोर देते हुये) मालव-प्रतिनिधि, मौर्य और क्षुद्रक गणराज्य की दुर्ग रक्षा में। यह कैसा विरोधाभास है सरदार !

चन्द्रगुप्त :- यह विरोधाभास नहीं एक राष्ट्रीय धर्म है, यवन-नायक ।

अलक्षेन्द्र :- (व्यंग्य से अट्टहास करते हुये) यह राष्ट्रीय-धर्म कब से सीख लिया सरदार !

चन्द्रगुप्त :- सीखने का कोई प्रश्न ही नहीं था यवननायक। यह तो हमारी एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।

अलक्षेन्द्र :- यह प्रक्रिया क्या अश्वक और गौर गणराज्यों को धूल में मिलाने के समय बन्द थी ?

चन्द्रगुप्त :- बन्द नहीं थी, मुप्त थी तभी तुम ऐसा साहस कर सके यवन-नायक ।

अलक्षेन्द्र :- मैं अपने पर बहुत संयम रखकर बात कर रहा हूँ ।

चन्द्रगुप्त :- (बीच में ही) और मैं भी यवन-नायक ।

अलक्षेन्द्र :- (जोर से) नहीं तो क्या इन चन्द किराये के सैनिकों के बल पर तुम (संकेत करके)

हमारे इन महान् पराक्रमी वीरों को मिट्टी में मिला देते ।

चन्द्रगुप्त :- (गंभीरता से) यवन-नायक ! वाक्य का पूर्वाह्वि उल्टाकर दीजिये शेष उत्तराह्वि आपकी वाणी से बिल्कुल ठीक निकला है ।

अलक्षेन्द्र :- (चीख कर) मालव सरदार। जबान पर लगाम लगाओ। बर्ना कुत्ते की मौत मार दिये जाओगे। (कहते ही तलवार खींच लेता है अलक्षेन्द्र की तलवार खिंचने के साथ ही चन्द्रगुप्त भी एक झटके से तलवार खींच लेता है। साथ ही उसके साथी भी किन्तु सिकन्दर के सैनिक मूर्तिवत् खड़े रहते हैं)

चन्द्रगुप्त :- (पैर पटक कर) सिकन्दर ! यह पार्सी-पोलिया नहीं हिन्दुस्तान है। अबतक अपनी दुरङ्गी नीतियों से यहाँ के वीरों को घोखा देते रहे। किन्तु अब (सिद्ध होकर) सम्हालों अपने गुल्म को। (झपटता है) (क्षणभर युद्ध होता है। सिकन्दर पीछे हटता-हटता भागता है, कुछ सैनिक दोनों ओर के मरते हैं। तुरन्त ही चन्द्रगुप्त स्वयं एक विशेष प्रकार का बिगुल फूँकता है। बन्द दुर्ग-द्वार तुरन्त खुल जाता है। अपनी-अपनी ओर हर-हर महादेव तथा विश्व-सम्राट सिकन्दर की जय के नारे लगने लगते हैं। सिकन्दर की विशाल सेना चारों ओर से आने लगती है। दुर्ग में से सबसे आगे वीरवर सिंहरण और उसके पीछे एक छोटी किन्तु चुस्त जवानों की टुकड़ी है।)

चन्द्रगुप्त :- (सिंहरण की ओर उन्मुख होकर अत्यन्त तीव्रता से) हम लोग हीरकाकार व्यूह-रचना में युद्ध करेंगे। शत्रु का दबाव चारों ओर है।

सिंहरण :- बहुत अच्छा ! कहकर अपनी टुकड़ियों को निर्देश देता है। सभी के मुँह बाहर

और पीठ अन्दर की ओर हो जाती है। दोनों ओर से तुमुल युद्ध होता है। आज प्रथम बार मालव तथा क्षुद्रक वीर सम्मिलित पराक्रम प्रकट कर रहे हैं। अलक्षेन्द्र की विशाल सेना का पलड़ा भारी होने लगता है। चन्द्रगुप्त एवं सिहरण एक बार अपने गिरते सैनिकों को तथा एक बार स्वयं एक दूसरे को देखकर पुनः द्विगुणित पराक्रम से जुट जाते हैं। तभी सहसा अलक्षेन्द्र के अंगरक्षक यूथप यूडेमस के पेट में भाला लगता है।

यूडेमस :- (पेट पकड़कर) आह ... (गिर जाता है। अलक्षेन्द्र पीछे मुड़कर देखता है। उसी की सेना का एक भारतीय सिपाही यूडेमस को समाप्त कर चुका है। एवं उसकी ताक में है।)

अलक्षेन्द्र :- (दांत पीस कर) कायर, गद्दार, तूने मेरा नमक खाया था।

सैनिक - (हँसकर) और अदा नहीं किया। क्यों न।

(तुरन्त तमतमाकर) अरे लुटेरे ! नमक तेरा नहीं अपनी भारत माँ का खाया है और तूने भी उसी का इतने दिन तक खाया।

अलक्षेन्द्र :- (कुछ नम्र होकर) तुमने अपनी प्रामाणिकता पर विश्वास दिलाया था सैनिक।

सैनिक :- अवश्य दिलाया था यवन-नायक; किन्तु मैं 'पुरु' नहीं हूँ जो तुम्हारे चक्र में आकर अपने ही भाइयों के रक्त से अपने हाथ रँगता। मुझे अपने सही शिकार की पहचान है। समूहो यवन-सम्राट। (झपटकर) आज देख लो कि भारतीय रक्त कितना लाल है। (सहसा पीछे से एक सैनिक उसके भाला मार देता है; किन्तु घायल होकर भी मुड़कर वह उसे समाप्त कर देता है। अलक्षेन्द्र मौका

पाकर उस पर दूसरा वार करता है। सैनिक गिर पड़ता है। तभी राजकुमार सिहरण विद्युत-गति से झपटकर अलक्षेन्द्र के पेट में साँग घुसा देता है। वह पेट पकड़े-पकड़े ही भागता है। सिहरण कुछ दूर पीछा करता है। पूरी यूनानी सेना में भगदड़ मच जाती है। बचे हुये सैनिकों को चन्द्रगुप्त समाप्त करने में जुटा है। सिकन्दर पर वार करने वाला सैनिक अन्तिम साँसे ले रहा है।)

सिहरण :- (उसके पास बैठकर उसे सम्हालते हुये) कौन हो वीर ? शत्रु सेना के बीच में कैसे फँस गये ?

सैनिक :- (पीड़ा दबाते हुए) बहुत दिनों से ... फँसा हूँ क्षुद्रक वीर ! क्या ... परिचय पा सकता हूँ।

सिहरण :- अवश्य प्राप्त करो वीर। घबराओ नहीं तुम्हारे स्वास्थ्य की पूरी चिंता की जायेगी। मैं क्षुद्रक नहीं मालव हूँ। वीरवर ! मेरा नाम सिहरण है।

(सुनते ही कुछ उठने का प्रयास करता है। सिहरण उसे सहारा देता है। अपना हाथ बढ़ाकर सिहरण के पैरों की धूल अपने माथे में लगा लेता है। सिहरण उसे स्नेह से सहलाने लगता है। वह पुनः कहता है)

सैनिक :- आज अपनी अभिलाषा को पूरा हुआ ... देख रहा हूँ ... राजकुमार। बहुत ... दिन ... पहले ... मेरे परम मित्र ... वीरसेन ... ने ... आपके ... बारे ... में बताया ... था। तभी ... से ... दर्शनों की ... अभिलाषा थी।

(सिहरण बीच में ही चिल्लाकर सैनिक से लिपट जाता है।)

सिहरण :-पं० जयादित्य शर्मा ! यह तुमने क्या किया ?

(यवन सैनिकों को समाप्त कर चन्द्रगुप्त का प्रवेश। सिहरण को इस दशा में देखकर)

चन्द्रगुप्त :-क्या हुआ सिहरण। यह सैनिक कौन है ?

सिहरण :- (चन्द्रगुप्त की ओर सर उठाकर रुँधे कंठ से) भाई, अनर्थ हो गया। अपने कार्य का सूत्रधार जयादित्य आज जा रहा है। इसकी रक्षा करो।

चन्द्रगुप्त :- (चौककर) जयादित्यशर्मा। (धीरज बँधाते हुये) धैर्य से काम लो, सिहरण। इन्हें दुर्ग के भीतर ले चलो।

(जयादित्य संकेत से चन्द्रगुप्त को बुलाता है और लुढ़ककर अपना सिर उसके पैरों पर रख देता है। क्षण भर के लिये चन्द्रगुप्त भी अधीर हो उठता है। फिर सम्मलकर बोलता है।)

यह क्या कर रहे हो ब्राह्मण देवता ? मैं क्षत्रिय हूँ तुम मेरे पूज्य हो।

जयादित्य :- (धीरे-धीरे) पूज्य आप हैं चन्द्र गुप्त जी। आप मेरे देवता के प्रियतम शिष्य हैं।

चन्द्रगुप्त :- (अधीर होकर) जया दित्य।

(जयादित्य अपने आप कुछ ध्यान करते हुये धीरे से आकाश की ओर हाथ जोड़ना हुआ)

गुरु..... देव..... भगवान् मुझे क्षमा क..... रता तुम्हारे..... सौ..... पेह..... ये का..... र्य को .. सि..... द्वि..... त..... क न..... पहुँ..... चा..... सका भार..... त..... माँ..... वि..... दा..... वि..... दा..... अ..... ग ला ज..... न्म..... पुनः..... ते..... री..... ही..... गोद..... में..... वि..... दा..... ।

(एक ओर सर लुढ़क जाता है।

सिहरण फूट-फूटकर रोने लगता है।)

सिहरण :-मेरे विजयाधार ! (हिचकियाँ भरते हुये) आज यह अधूरी विजय लेकर गुरुदेव को कैसे मुँह दिखाऊंगा।

चन्द्रगुप्त :- (सान्त्वना देते हुये) अधीर मत हो सिहरण। इस राष्ट्र-यज्ञ की वेदी में अभी जाने कितनी आहुतियाँ देनी पड़ेंगी। वीरवर जयादित्य शर्मा का राजकीय सम्मान के साथ अन्तिम संस्कार करने की व्यवस्था करो।

पटाक्षेप



“रूढ़ियों के अँधेरे”

—चाँद सेठ (दशम)

[रूढ़ियों की अँधेरी कुहेलिका में भटक गया एक पढ़ा लिखा जागरूक नवयुवक किन्तु उसकी प्रत्युत्पन्न मति की भी सराहना करनी चाहिए। इसे ही कहते हैं — “तुम डाल-डाल, हम पात-पात”]

पात्र-परिचय —

अखिलेश—एक पढ़ा लिखा जागरूक नवयुवक।

पण्डित जी—गया का एक ठोंगी पंडा।

मँगुवा—समान होने वाला एक कुली।

पुजारी—गया के मन्दिरों का मूर्ति-पूजक।

दृश्य १

[गया बस-स्टेशन—समय लगभग सन्ध्या के ६ बजे, कुलियों की तथा बसों की आवाज के बीच बस से उतरते हुये अखिलेश का हृदय अपनी गम्भीरता खो बैठा। कई पण्डित अलग-अलग अपने-अपने जजमानों से बात-चीत कर रहे थे। उनमें से एक ने, जो कि लँगड़ा था, घुटनों तक मैली-कुचैली धोती, फटा सा कुर्ता उस पर सदरी के साथ कन्धे पर अँगोछा डाले था, अखिलेश से पूछा—]

पण्डित जी—कौन जात, कहाँ के बासी ?

अखिलेश—[अपना समान सम्भालते हुये] आप कौन होते हैं, मेरा अता-पता पूछने वाले ?

पण्डित जी—[अपनी बड़ी हुई दाढ़ी पर हाथ फेरते हुये] हम तो बस हम ही होते हैं, हाँ तो तुम कौन जात, कहाँ के बासी ?

अखिलेश—देखिये जी, आपको यदि मुझ पर किसी

प्रकार का सन्देह हो, तो... मेरे समान की तलाशी ले लें, अन्यथा मैं कोई अपराधी नहीं।

पण्डित जी—बेटा, हम कोई और नहीं, हम तो तुम्हारे ही पुरोहित हैं। उधर देखो (संकेत करते हुये),। मेरे ही जैसे कई पण्डित अपने जजमानों से, जी अपने पुरखों की गति करवाने आये हैं, बात-चीत कर रहे हैं।

अखिलेश—अरे... मैं कोई किसी की गति करवाने थोड़े ही आया हूँ, मैं तो अपनी कम्पनी के कुछ काम से यहाँ आया हूँ।

पण्डित जी—हो न हो, मेरे ही जजमान हो, अब चुपचाप मेरे पीछे आओ भी।

अखिलेश—अरे.....

पण्डित जी—अरे... वरे कुछ नहीं, मँगुवा...
ओ मँगुवा, साहब का समान उठाकर मेरे पीछे आ,

[मँगुवा—ठण्ड में ठिठुरता हुआ एक मजदूर वस्त्र केवल धोती और बनियान]

अखिलेश—मगर.....मेरी भी तो सुनिये।

[अचानक किसी खच्चर की टक्कर से वह गिर जाता है और पुनः फुर्ती से उठकर पण्डित जी और मँगुवा के पीछे भागता है क्योंकि उनके समान समेत गायब हो जाने का डर रहता है। इधर खच्चर वाला बड़बड़ाता रहता है।]

[पण्डित, अखिलेश को कई गलियों के अन्दर ले जाकर एक विचित्र मकान की छोटी कोठरी में ले जाता है जहाँ उसका समान बन्द करवाके उसे एक बड़े कमरे में ले आता है। कमरे में फटी दरी पर मैली सफेद चादर तथा एक तकिया पड़ा है। एक किनारे हजारों बही खाते रखे हैं। दीवार पर दो चित्र लगे रहते हैं।]

पण्डित जी (मँगुवा से) पैसे सुबह आकर ले जाना।

[मँगुवा चला जाता है। पण्डित जी तकिये के सहारे बैठ जाते हैं और कहते हैं—]

पण्डित जी—बैठो जजमान [दरी की ओर संकेत करते हुए]

[अखिलेश बैठ जाता है। पण्डित बही खातों में से एक बही खाता निकाल कर लाते हैं और कहते हैं—]

पण्डित जी—यह देखो, तुम हमारे यहाँ आज से हजार साल पहले तुम्हारे दादा के परदादा के परदादा, मेरे दादा के परदादा के परदादा के परदादा के पास अपनी पत्नी की गति करवाने आये थे। और [अखिलेश बात काटते हुये]

अखिलेश—बस, बस, मैं समझ गया।

पण्डित जी—काफी समझदार लगते हो।

अखिलेश—किन्तु,.....उनकी पत्नी तो उनसे पहले ही मर गई थीं।

पण्डित जी—अरे भाई, तुम्हें ठीक से थोड़े पता है, मेरे बही खाते एकदम सही हैं। अच्छा, अब बताओ तुम किस की क्रिया-कर्म या गति करवाना चाहते हो ?

अखिलेश—क्या बकते हो ? मेश मतलब है कौसी अशुभ बात मुँह से निकालते हो, मैं तो यहाँ अपने धन्धे के लिये आया हूँ।

पण्डित जी—अब जब तुम यहाँ आ ही गये हो तो बहती गंगा में हाथ धो लो, याद करो कोई... तुम्हारा सम्बन्धी मरा हो और इस समय भूत पिशाच बन कर भटक रहा हो।

अखिलेश—जी नहीं, मुझे ऐसी कोई घटना याद नहीं।

पण्डित जी—[निराश होते हुये, अचानक प्रसन्न हो जाते हैं और कहते हैं—] सुनी, तुम अपनी गति करवा लो।

अखिलेश—क्या, आप पागल तो नहीं हो गये ? एक जीते-जागते आदमी के बारे में ऐसा कह रहे हैं ?

पण्डित जी—उत्तेजित मत हो, मरना तो सबको है। हो सकता है तुम्हारे सम्बन्धी गति न करवायें और तुम मोक्ष प्राप्त न कर सको। खैर . . . तुम विचार कर लो। मैं सुबह तुम्हें जगाने आऊँगा और यह लिहाफ ले लो [गन्दा, मैला-कुचैला लिहाफ फेंकते हुये, वह बाहर चला जाता है और दरवाजा बन्द कर देता है।]

दृश्य २

[पूस की शीत कालीन रात, ठिठुरते हुये अखिलेश ने किसी तरह बितायी और सुबह जब उसे नींद आने लगी तो पण्डित जी उसे जगाने आ गये।]

पण्डित जी—उठो जजमान, अब सोना नहीं है, तैयार हो जाओ चलने के लिये।

[कुछ देर बाद अखिलेश तैयार होकर पण्डित जी के पीछे-पीछे गलियों की भूल-भुलैया से निकल कर एक टूटे घाट पर पहुँचता है। टूटे हुये मन्दिर से सटे हुये कीचड़-युक्त तालाब को देखकर वह भविष्य की कल्पना से भय-भीत होने लगता है।]

पण्डित जी—कुल्ली करके, शुद्ध हो जाओ।

अखिलेश—इस ठण्ड में कुल्ली करूँ और वह भी इस तालाब के पानी में।

पण्डित जी—हाँ, हाँ यह वह सरोवर है जहाँ महा-भारत के तमाम योद्धाओं का क्रिया-कर्म हुआ।

[अखिलेश ने देखा कि कई नर, नारी उसमें डुबकियाँ लगा रहे थे।]

अखिलेश—आइये, हम दोनों स्नान करके शुद्ध हो जायें।

पण्डित जी—मुझे जरा जुकाम है वैसे भी मैं शुद्ध हूँ तुम्हारे शुद्ध होने की आवश्यकता है।

अखिलेश—मेरे स्नान का और कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता ?

पण्डित जी—हो सकता है, हो जायेगा, आओ तुम यहाँ बैठो। [और वे मंत्रोच्चारण के साथ अखिलेश से हवन-सामग्री कुण्ड में डलवाने लगे।]

पण्डित जी—अच्छा अब, मरने वाले का अर्थात् अपना स्मरण करो।

अखिलेश—अ च्छा।

पण्डित जी—अब शय्यादान आदि के लिये बटुआ खोलो।

अखिलेश—अरे, मैं अपना बटुआ तो वहीं भूल आया।

पण्डित जी—खैर, दान के रुपये बाद में इकठ्ठा ले लूँगा।

[और पण्डित जी शय्यादान आदि ऐसे कार्य करने लगे।]

पण्डित जी—अब गऊदान करो, लाओ भाई गऊ माता को।

अखिलेश—अरे यह छोटी सी गाय कैसे मुझे भव-सागर से पार करायेगी, शायद यह ही डूब जाय।

पण्डित जी—अरे मूर्ख, असली कामधेनु तो मृत्युलोक और देवलोक के बीच तुम्हारी प्रतीक्षा करेगी। [गाय की डोरी थमाते हुये] इसके भी रुपये डेरे पर चलकर देना।

अखिलेश—अच्छा [व्यंग्य पूर्ण भाव से।]

पण्डित जी—अब ब्राह्मण भोज होता है, बोलो कितने ब्राह्मणों को भोज दोगे ?

अखिलेश—इसके भी नकद रुपये मिल जायेंगे ।
[मुस्कराहट के साथ]

पण्डित जी—अच्छा अब तेल-दान के लिये मन्दिर में चलो ।

[पुजारी जो कि तेल चढ़वा रहा था, उसे देखकर ऐसा लग रहा था, जैसे उसके ही ऊपर तेल चढ़ रहा हो, गन्दी सफेद धोती और जनेऊ में वह विचित्र ही प्रकार का लग रहा था ।]

पुजारी—कितना तेल लाऊँ ?

अखिलेश—पण्डित जी, कितना तेल चाहिये पाव या डेढ़ पाव ?

पण्डित जी—अरे पाँच या ग्यारह सेर की बात करो ।

अखिलेश—इतना अधिक

पण्डित जी—हाँ,हाँ

[पुजारी, थोड़ा तेल अखिलेश से डलवाता है तथा और तेल लेने चला जाता है । अखिलेश भी उसके पीछे-पीछे जाता है और देखता है कि वही तेल जो उसने डाला था, वही फिर नीचे के सूरख से आ-आकर इकट्ठा हो रहा था अर्थात् पाँच, सात किलो के तेल से सारा काम चल रहा था । पुजारी ने देखा कि वह भेद जान गया तो वह उसकी ओर लपका और तेल के चिकने फर्श पर गिर पड़ा ।]

अखिलेश—पण्डित जी, चलिये मुझे जल्दी ही बस पकड़नी है ।

पण्डित जी—अच्छा, आओ चलें ।

[और वे दोनों पुनः कोठरी के बाहर पहुँच गये, कोठरी से समान निकालने के बाद पण्डित जी अपनी हथेली खुजलाने लगे ।]

अखिलेश—[पाँच आने देते हुये] यही मेरी श्रद्धा है ।
[मँगुवा, चलो उठाओ समान]

पण्डित जी—यह क्या मजाक है ?

अखिलेश—आपने जीते-जागते आदमी की गति करवाई वह क्या मजाक नहीं था ?

पण्डित जी—[चिल्लाते हुये] यह डाका है, लूट है . . .

अखिलेश—आप दूसरों को ठगते हैं वह क्या है

अच्छा नमस्कार । [और अखिलेश मँगुवा के साथ चला जाता है ।]

पण्डित जी वृत्त बने खड़े रहे और फिर एकदम घड़ाम से फर्श पर गिर पड़े । शायद उनकी गति से दुर्गति और उससे वे परमगति को प्राप्त हो गये थे ।]

[पटाक्षेप]



“बूजी”

शशि शर्मा 'दशम'

[अपने सम्पर्क में आये हुये सभी व्यक्तियों पर एक अमिट छाप डालने वाली, विद्यालय की संस्थापिका श्रद्धेया बूजी की स्मृतियां, भावुक छात्र-लेखक की लेखनी से एक बार पुनः उभर उठी हैं। अपने सीमित ज्ञान के आधार पर लेखक की भावुकता ने अपने विषय को निखार दिया है।]

“एक दीनदयाल मिटा है तो क्या, मैं ऐसे अनेक दीनदयाल ढाल कर रख दूंगी।”—ऐसा आत्म-विश्वास लेकर अपनी कल्पना के भव्यतम रूप को दीनदयाल विद्यालय का मूल रूप देने वाली श्रद्धेया बूजी अब हमारे बीच में नहीं है; किन्तु उनका शील, उनका स्नेह तथा उनका संबल आज भी हमारा पाथेय है, और कदाचित् जीवनपर्यन्त रहेगा।

भारतीय संस्कृति में आपाद-मस्तक स्नात, सत्कर्मों की पोषिका, सनातन-धर्म के प्रति एक आराधक की भाँति अपना जीवन समर्पित कर देने वाली, शिक्षा मर्मज्ञा आदरणीया बूजी का पूरा नाम श्रीमती सुशीला नरेंद्रजीत सिंह था। आपका जन्म काश्मीर के धनकुबेर श्री दीवान बद्रीनाथ जी के सुविख्यात परिवार में हुआ था। हिमालय की सुरम्य घाटी में स्थित उनका महल आज भी उनकी संपन्नता की कहानी कह रहा है; किंतु धन-संपत्ति का मोह उनके लिये अधिक आकर्षण न बन सका। परिणामस्वरूप निस्पृहभाव से आप सामाजिक कार्यों की ओर उन्मुख होने लगीं। काश्मीर के असीम

मौदर्य की एक स्पष्ट छाप उनके स्वभाव में थी। पूर्व संचित सत्कर्मों के ही कारण उनका विवाह भी कानपुर के एक प्रख्यात कुल में जन्मे, उनके लिये सर्वथा उपयुक्त, असामान्य व्यक्तित्व सम्पन्न, भारतीयता के प्रति अगाध श्रद्धा रखने वाले माननीय बैरिस्टर नरेंद्रजीत सिंह के साथ हुआ।

भारतीयता के सुदृढ़ आधार पर हिन्दू-संस्कृति के पुनरुत्थान के जो स्वप्न आपने देखे वही आपको सामान्य घरातल से ऊपर उठाकर कुछ करने की प्रेरणा दे गये। फलस्वरूप शिक्षा-धर्म-संस्कृति के संरक्षण-संवर्धन में ही आपने अपना जीवन समाप्त कर दिया। भारतीयता के इस नष्ट प्राय, जीर्ण-शीर्ण-प्रसाद के नवनिर्माण के स्वप्न देखने वाली बूजी, स्वप्नलोक में ही विचरण करती रही हों—ऐसा नहीं था। अपनी शक्ति भर इन स्वप्नों के क्रियान्वय का आपने पूर्ण प्रयास भी किया।

उनके जीवन में कट्टरता, लगन एवं कर्मठता कूट-कूट कर भरी थी। सन् १९४८ की फरवरी में जब देश की सर्वोत्कृष्ट संस्था राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ पर कुछ मिथ्या-भ्रमों के कारण अपनी ही

सरकार ने प्रतिबंध की घोषणा कर दी और परिणाम में अनेक संघ-प्रेमी एवं संघ के प्रत्यक्ष कार्यकर्ता जेलों में भरे जाने लगे, उस समय सहप्रांत-संघचालक माननीय बैरिस्टर साहब भी कारागार में ले जाये गये। वास्तव में यह प्रसंग किसी भी सामान्य नारी के लिये स्वाभाविक रूप से बड़े दुःख का विषय था; किन्तु उस समय भी आपने केवल माननीय बैरिस्टर साहब को ही नहीं वरन् अनेक बंदी कार्यकर्ताओं को जो प्रेरणायें दीं; वे मात्र अनुभव ही की जा सकती हैं। इतना ही नहीं जब तक माननीय बैरिस्टर साहब एवं अन्य प्रमुख कार्यकर्ता जेल में रहे, माननीया बूजी ने भूमि पर ही शयन किया तथा एक तपस्विनी की भाँति कठोर जीवन व्यतीत किया।

समय व्यतीत होने के साथ ही संघ के प्रति गलत धारणायें भी समाप्त हुईं और परिणामतः सरकार को संघ पर से प्रतिबंध हटाना पड़ा। संघ के कार्यकर्ता फिर से राष्ट्र-निर्माण के कार्य में जुट गये। नवीन शक्ति प्राप्त कर इसी संस्था ने जनसंघ के रूप में भी राजनीति के द्वारा जन सेवा प्रारम्भ की। दीनदयाल जी जैसे अनेक कार्यकर्ता पूरे उत्साह के साथ इसमें जुटे और अखिल भारतीय संस्था के रूप में इसे प्रमुख स्थान दिलाया। दीनदयाल जी का संबंध एक कार्यकर्ता होने के कारण बूजी से पहले से ही था। राजनीति में प्रवेश करने के बाद तथा राजनैतिक घिसी-पिटी लकीर से हट कर जब उस महामनीषी ने 'एकात्म-मानववाद' एवं 'पार्टी-चुनाव' जैसे अभिनव प्रयोग प्रस्तुत किये तो कतिपय प्रतिगामी विचारधारा वालों को उनका अस्तित्व खटकने लगा। परिणाम बड़े भयावह रूप में सामने आया और जिसकी कोई कल्पना भी न कर सकता था, वह राक्षसी कृत्य उन्हीं सिरफिरोँ द्वारा कर डाला गया। तात्पर्य यह कि उनकी हत्या कर दी गई। राष्ट्र के प्रति समर्पित इस व्यक्तित्व का इस प्रकार अवसान देखकर बूजी को जो हार्दिक पीड़ा हुई, वह अवर्णनीय है। समाचार सुनकर उनके वे

शोकाप्लावित उच्छ्वास प्रत्यक्षदर्शियों की आज भी हिचकी बाँध देते हैं। राष्ट्र को अपना सर्वस्व अर्पित कर देने वाले इस महामनीषी का क्रूरतापूर्ण अंत उनको एक चिर पीड़ा दे गया और उस पीड़ा का समाधान इस विद्यालय के रूप में खोजने की उन्होंने चेष्टा की। इसी आशा के साथ इस विद्यालय का निर्माण हुआ कि भारत माता एक नहीं अनेक दीनदयालों के प्रयासों से पुष्पित-पल्लवित होगी। उनके मन में इस कार्य की पूर्णता के लिये कितनी लगन थी, यह उनके विद्यालय-भवन-निर्माण के समय किये गये परिश्रम से आँका जा सकता है। उन्होंने स्वयं अपनी निरीक्षण-शक्ति के आधार पर ही अपने विद्यालय का निर्माण-कार्य एक वर्ष के अन्दर संपन्न कराया। जो श्रमिक इस कार्य में लगे थे, उन्हें भी वे योग्यतानुसार पुरस्कार आदि देकर संतुष्ट करती रहती थीं। उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार के कारण वे सब उनके प्रति प्राणों से भी अधिक प्रेम और श्रद्धा रखते थे।

बूजी व्यावहारिक शिक्षा की पक्षधर थीं। उनका विचार था—“यदि अध्यापक विद्यार्थियों को विमान के विषय में बताना चाहता है तो वह मौखिक बातें ही न करके यदि एक विमान का पूर्ण ढाँचा सामने रखकर उसकी प्रक्रिया स्पष्ट करे तो वह अधिक प्रभावकारी होगा।” उनकी हार्दिक इच्छा थी कि वे अपने विद्यालय में भी ऐसी व्यावहारिक शिक्षा ही राष्ट्र के इन कर्णधारों को दिलायें।

स्वास्थ्य एवं सच्चरित्रता का कितना ध्यान था उनको, इसका प्रमाण विद्यालय के विशाल-कक्ष में भगवान् हनुमान की मूर्ति है। हनुमान् जी की प्राण-प्रतिष्ठा के अवसर पर मिष्ठान्न वितरण, प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति के लिये करवा के, आपने ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया कि मानों उनके किसी घनिष्ठतम पारिवारिक व्यक्ति का कोई संस्कार संपन्न हो रहा हो। इस कार्यक्रम में

हिंदुत्व के प्रति आस्था, आत्मीयता और सेवाभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते थे। धर्म एवं संस्कृति से संबंधित सभी कार्य आपने अपने ही कुशल निरीक्षण में किये।

सरलता, सहृदयता, सद्व्यवहार और वात्सल्य की तो वे प्रतिमूर्ति थीं। छात्रों के आचार-व्यवहार से लेकर उनके आहार तक की चिंता उन्होंने की। बालकों तथा अध्यापकों की समस्याओं के समाधान-हेतु वे सदैव तत्पर रहती थीं। व्यवहार में वे कोमल अवश्य थीं; किन्तु उनका एक विशिष्ट प्रभाव भी सदैव व्याप्त रहता था। प्रशासनिक कुशलता में तो वे अद्वितीय थीं। उनकी आज्ञा का पालन सभी सहर्ष किया करते थे। छात्रों को सदा ही उनसे मातृवत् स्नेह की प्राप्ति हुई।

विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म महाविद्यालय के अनेक निर्धन किंतु मेधावी छात्र उनसे गुप्त-आर्थिक सहायता प्राप्त करते रहे। यश-प्राप्ति के प्रति आकर्षण न होने के कारण उन्होंने इस राशि को गुप्त ही रखा। उनकी प्रसिद्धि-पराङ्मुखता इसी बात से सुस्पष्ट है कि उनके स्वर्ग रोहण के पश्चात् उनका एक भी चित्र सहज रूप से प्राप्त न हो सका। बड़े परिश्रम के बाद उनकी पुत्री के घर (अमृतसर) में एक चित्र प्राप्त हो सका जिसकी कई प्रतियाँ करवाकर उनसे संबंधित संस्थाओं ने अपने यहाँ लगवायीं। इस प्रकार वे समाजोत्थान तो चाहती थीं, राष्ट्र के नवनिर्माण

एवं अखंडता के लिए प्राणपण से प्रयत्न तो करती थीं; किंतु यश-प्राप्ति के संकुचित उद्देश्य को लेकर नहीं।

वे केवल समाज-सेवा में तल्लीन होकर अपने पारिवारिक कर्तव्यों के प्रति उदासीन हो गयी हों—ऐसा कदापि नहीं था। माननीय बैरिस्टर साहब की आंतरिक देशभक्ति की पुण्य सलिला को प्रवाह प्रदान करने का श्रेय भी यदि उनको दिया जाय तो अत्युक्ति न होगी। उनके परिवार का स्नेह-पूर्ण व्यवहार, धर्मपरायणता और उज्ज्वल चरित्र—ये सभी उनकी इस जीवनपर्यंत चलनेवाली तपश्चर्या के ही सुफल हैं।

इस प्रकार वे स्वयं हमारे लिए अनेक व्यावहारिक आदर्श प्रस्तुत कर गयी हैं। यद्यपि आज वह दिव्य शक्ति विदा हो गयी है, तथापि वह हमारा मार्ग निर्देशन कर रही है, हमारे हृदयों में नवीन आशा, विश्वास, शक्ति एवं दृढ़ता का सञ्चार कर रही है। हमारे लिये समस्त साधनों की व्यवस्था करके तथा लक्ष्य बताकर वह दिव्य शक्ति आज ओझल अवश्य हो गयी है; किन्तु अब भी आशा भरे नेत्रों से हमें निर्निमेष निहार रही है कि हम उनके स्वप्नों के भारत का निर्माण कर रहे हैं अथवा शिथिल-मन पड़े हैं। इस विद्यालय की प्रतिष्ठा के अनुरूप ही अपने को ढालकर उनकी कल्पना को साकार कर देना ही उनके प्रति सर्वोत्तम श्रद्धाञ्जलि होगी।



.....और मैं उनको रोकने में सफल हो ही गया ।

—अनित कुमार (दशम)

[सतत विद्रोह-शील किशोर मनः स्थिति का एक जीता-जागता रिपोर्टाज । आक्रोश की बाढ़ को आचार्यों के धैर्य व सहिष्णुता का बाँध रोक ही तो लेता है ।

जीवन एक ऐसा रथ है जिसे सुख और दुःख दोनों रास्तों पर से गुजरना पड़ता है । संयोगवश कभी-कभी ऐसा प्रसंग आ जाता है जो जीवन पर्यन्त भुलाये नहीं भूलता ।

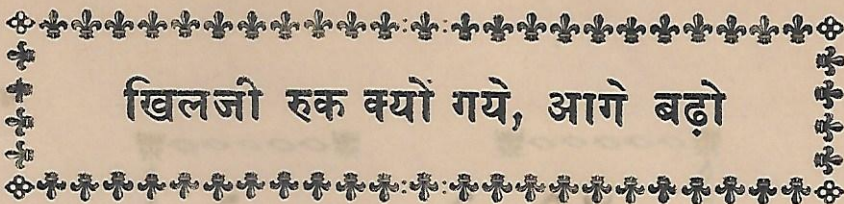
मैं अपने साथियों एवं श्रद्धेय आचार्यों के साथ नेपाल की ओर देश-दर्शन करने जा रहा था । २३ अक्टूबर, १९७४ को हम लोग प्रयाग में रात्रि ९-३० बजे सरस्वती शिशु मन्दिर पहुँचे । वस से बिस्तर उतारे जाने लगे । सब लड़के अन्दर जाने लगे । मैं और एक दो लड़के बस के अन्दर छोटा २ सामान उतरवाने लगे । इतने में हमारे आचार्य एवं उस आयोजन के प्रमुख श्री ओम शङ्कर जी आए । उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हारी एक शिकायत है कि तुम अपने दल के साथ नहीं सोते हो । बाल-सुलभ बुद्धि के अनुसार मुझे स्वाभाविक रूप से क्रोध आया क्योंकि मेरे अनुसार यह झूठी शिकायत थी । यह झूठी शिकायत इसलिए थी कि अभी तक हम लोग एक ही रात सोये थे और वह भी चित्रकूट में । चित्रकूट में स्थानाभाव के कारण मैं दूसरे दल के साथ सो गया था । इसलिए मैं

और भी खीझ गया तथा मन ही मन भोजन न करने का निश्चय कर लिया । मैंने आचार्य जी से कह दिया कि मैं आज भोजन न करूँगा । आचार्य जी ने स्नेह से समझाया एवं यह भी कहा कि एक गलती के बाद दूसरी न करनी चाहिये; लेकिन मैं अपने जिद्दी स्वभाव के कारण मजबूर था । मैंने कह दिया कि शिकायत करने वाले की हिम्मत कैसे पड़ी, और तमतमाकर बैठ गया इतने में शेष सभी लड़के भोजन कर चुके थे । आचार्य जी मुझे भोजन स्थल पर ले गए । वहाँ पर उन्होंने बड़े ही आत्मविश्वास के साथ मेरे लिए भोजन मँगाया । लेकिन वहाँ पर भी मैंने अपनी असभ्यता का परिचय दिया । मैंने भोजन करने के लिए मना करके उनका विश्वास तोड़ दिया । फिर उन्होंने मुझे बुरी तरह से डाँटा । मैंने रोना शुरू कर दिया । आँसू बहते जा रहे थे और मैं उनका विश्वास अपने प्रति समाप्त करता जा रहा था । इतने में श्री आनन्द जी, अर्थात् हम लोगों के एक दूसरे प्रिय आचार्य जी, वहाँ पर आ गए । उन्होंने भी समझाया । मेरे मन में अब कुछ विद्रोह सा हो गया था । आचार्य जी जितने स्नेह से हाथ रखते थे, उतनी ही

प्रतिकार भावना से मैं उनका हाथ हटा देता था। अब भी जब मैं उस स्नेहिल हाथ को याद करता हूँ तो रो देता हूँ कि मेरा इतना बेतुका तथा अप्रत्याशित व्यवहार सहन करते हुए भी मेरे आचार्य जी ने अपना स्नेह यथावत् रखा। धन्य हैं वह उनके मन को मेरे व्यवहार से ठेस लगती अवश्य होगी किन्तु तनिक भी प्रकट न करते हुए वे मुझे सतत रूप से समझाते जा रहे थे लेकिन मैं अपनी जिद छोड़ने को तैयार नहीं था। अन्त में उन्होंने दुःख एवं वेदना मिश्रित स्वर में कहा ठीक है। तुम्हारी जो इच्छा हो करो। जब मेरे रहने से तुम सबको कष्ट ही होता है तो मैं प्रातः काल ही वापिस लौट जाऊँगा।” मुझे उनकी बात सुनकर अपने पर बहुत क्रोध आया। मैं यह कदापि नहीं चाहता था कि वे वापिस जाएँ क्योंकि उनके वापिस जाने का अर्थ था सभी कुछ अस्त-व्यस्त हो जाना और उस अस्त-व्यस्तता का कारण मैं बनता। अतः मैं मन से पूरा-पूरा चाहता था कि

वे वापिस न जायें, किन्तु अपनी आदत से मजबूर मैं कुछ भी नहीं कर पा रहा था। उनको रोकने के लिये आवश्यक था कि उनकी आज्ञा-पालन अर्थात् कुछ न कुछ खाना। दूसरी तरफ उन्होंने स्वयं भी भोजन नहीं किया था। शारीरिक कष्ट में उनकी भूख और अधिक अग्नि डाल रही थी। अन्त में उन्होंने मुझसे कहा, “कह दो कि मैं आपकी बात न मानूँगा।” अब बजाय उत्तर देने के मेरे आँसुओं की धारा और अधिक तेज हो गई और उनका रहा सहा क्रोध उन्हीं आँसुओं के साथ बह गया। उन्होंने फिर मुझे स्नेह पूर्वक समझाया। और इसके बाद ईश्वरीय प्रेरणा एवं उनके इतनी देर के सतत प्रयास ने रंग दिखाया और मैंने खा लिया। उन्हें अपार शान्ति मिली; किन्तु सबसे अधिक प्रसन्न मैं था; क्योंकि मैं उनको वापिस जाने से और एक ऐसे प्रगाढ़ सम्बन्ध जो कि टूटने ही वाला था, को बचाने में सफल हो गया था।





खिलजी रुक क्यों गये, आगे बढ़ो

—नवनीत अग्रवाल सप्तम क

[भावनाओं के उफनते हुये, सुकुमार, किन्तु स्याई भावद्वेलन, जिन्हें बाल रचनाकार ने अपनी काल्पनिकता से शतधा भास्वर कर दिया है ।]

घोर दंभ में चूर दिल्ली का बादशाह अलाउद्दीन खिलजी, चित्तौड़ को जीतकर, पद्मिनी को पाने की इच्छा से चित्तौड़ के किले की ओर बढ़ा जा रहा था। विशालकाय किले की गगन-चुम्बी दीवारें चित्तौड़ के गौरव की अनुभूति करा रहीं थी। पर आज वह किला सूना पड़ा हुआ था। राजपूत सैनिक कल ही भगवावस्त्र धारण करके भारत माँ के चरणों पर न्योछावर हो चुके थे।

खिलजी ने दूर से ही आकाश में उड़ता हुआ घुँआ देखा। इस विशालकाय किले में, जहाँ एक भी मनुष्य नहीं था, यह घुँआ कैसा ? खिलजी के हृदय की गति अनेक शंकाओं-कुशंकाओं से तीव्र हो गयी। उसी क्षण, जब खिलजी इस सोच में डूबा हुआ था, एक अट्टहास हुआ। फौलाद का बना खिलजी का हृदय भी उस समय भय से धड़-धड़ करने लगा। तभी पुनः अट्टहास हुआ। अब खिलजी भयातुर होकर अपने सैनिकों के पीछे दुबक गया।

कुछ ही क्षणों में एक बुढ़िया, लाठी टेकते खिलजी के पास आ गयी। सफेद बाल, गालों पर झुर्रियाँ, पतले-पतले पैर, अंदर घंसी हुयी आँखें। इस प्रकार का चेहरा देखकर खिलजी भयभीत हो गया किंतु पुनः साहस करके बोला—पद्मिनी कहाँ है ? बुढ़िया घृणा मिश्रित स्वर में बोली—“तुम

पद्मिनी से मिलना चाहते हो ?” “हाँ, हाँ मैं पद्मिनी से मिलना चाहता हूँ,” खिलजी ने बात दुहराई। “तुम पद्मिनी को चाहते हो, आओ मेरे साथ”—यह कहकर वह बुढ़िया उसे उस प्रांगण में ले चली जहाँ चंदन की लकड़ियों से प्रज्वलित अग्नि के मध्य अनेक जली-अघजली हड्डियाँ पड़ी हुयी थीं। यह देखकर खिलजी अवाक् होकर कुछ दूर पर ही रुक गया तथा कौतूहल से उस बुढ़िया को देखने लगा। बुढ़िया बोली खिलजी, रुक क्यों गये, तुम पद्मिनी से मिलना चाहते हो तो आगे बढ़ो। उस बुढ़िया ने घृणा और वितृष्णा से वही वाक्य बार-बार दुहराया कि खिलजी आगे बढ़ो, रुक क्यों गये यही कहते कहते उस अवशिष्ट अग्नि में मुँह के बल वह भी घुस गयी। क्षण मात्र में वह शांतचित्ता पुनः धधक उठी और बर्बर खिलजी दस कदम पीछे हट गया तथा माथा थाम कर बैठ गया और कराह कर बोला—मैंने चित्तौड़ को कहने के लिये तो जीत लिया पर मेरी यह जीत हार से भी बदतर है। जैसे ही उसने अपना यह वाक्य पूरा किया और आँखे खोली, सामने उसी बुढ़िया की जलती लपटें लपलपाती हुयी मानो उसे खाने के लिये बढ़ रही थीं और उसके कानों में बार-बार स्वर गूँज रहा था, खिलजी रुक क्यों गये आगे बढ़ो.....।

—○—○—

फाँसी के तख्त से

—मदन पासी षष्ठ ख

[भावना-सम्पन्न बाल-हृदय की एक कसक, जिसे अपने 'आदर्श' के ऐतिहासिक पत्र को बेकर प्रकट किया गया है ।]

शहीदों का शहीद सरदार भगतसिंह २३ मार्च १९३१ को यों फाँसी चढ़ा कि जैसे दूल्हा चीकी पर चढ़ता है। शहादत के शोक की इस बेजोड़ मिसाल ने ३ मार्च, १९३१ को जेल से अपने छोटे भाई कुलतार सिंह को अपनी जिन्दगी का अन्तिम पत्र लिखा।

जिन्दगी से भरपूर और मौत की मोहब्बत से लवरेज यह पत्र आज भी हम सब की धाती है। पत्र इस प्रकार है :—

अजीज कुलतार,

आज तुम्हारी आँखों में आँसू देखकर बहुत रंज हुआ। आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था। तुम्हारे आँसू मुझसे बर्दाश्त नहीं हो रहे थे बर्कुरदार हिम्मत से तालीम हासिल करना और सेहत का ख्याल रखना। हौसला बुलन्द रखना। और क्या कहूँ।

उन्हें यह फिक्र है हरदम

नई तर्जें जफा क्या है ?

हमें यह शोक है देखें

सितम की इत्तहा क्या है ?

गौर से क्यों खफा रहें

चर्ख का क्यों गिला करें ?

सारा जहाँ अदू सही,

आओ मुकाबला करें ?

कुछ ही दम का मेहमाँ हूँ

बुझा चाहता हूँ ?

मेरी हवा में रहेगी

ख्यालों की बिजली ?

ये मुश्तखाक है,

फानी रहे रहे न रहे ?

अच्छा इजाजत।

खुश रहो अहले वतन।

हमतो सफर करते हैं अब।

तुम्हारा भाई
भगत सिंह

आगे क्या लिखूँ, कुछ समझ में नहीं आता।

वैसे भी लिखना पढ़ना विशेष रुचता नहीं; किन्तु इस शहीदे आजम की रूह आज भी मेरे दिल को झकझोर देती है। अतः उसकी याद में बिना कुछ लिखे भी नहीं रह सकता था।

नौकरी

—दुर्गेश माधव अवस्थी नवम 'क'

[बेरोजगारी की विकराल दाढ़ों के मध्य अभागा प्रभात..... किंतु अंतोगत्वा वह दिशा पा ही लेता है। देश में शिक्षितों की बेरोजगारी का एक बदरंग चित्र भी कथा में उभरता प्रतीत होता है।]

सेठ रामचरण के यहाँ मंगल-वाद्य बज रहे हैं। वर्षों के बाद उनके यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ है। इतने दिनों की मनोतियों के बाद उनकी एकमात्र अभिलाषा आज पूर्ण हो गई। सेठ रामचरण कपड़ों के व्यापारी हैं तथा शहर के धनी एवं प्रतिष्ठित लोगों में गिने जाते हैं अतएव आज सायंकाल एक शानदार भोज का आयोजन किया गया है। भोज में शिशु का नामकरण भी हो गया। शिशु का नाम प्रभात रखा गया।

धीरे-२ प्रभात खुशियों में पलने लगा। वह अपने घर में प्रसन्नता का प्रभात लेकर आया था। उसके पिता जी को लगातार व्यापार में लाभ होने लगा। साथ ही साथ उसके एक प्यारी बहन उत्पन्न हो गयी, जिसका नाम पूर्णिमा रखा गया। प्रभात तथा पूर्णिमा दोनों ही बुद्धि के आगार थे। पूर्णिमा प्रभात से चार साल छोटी थी। जब प्रभात दसवें में पढ़ता था तो वह कक्षा षष्ठ में पढ़ती थी। हाई-स्कूल में प्रभात प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ।

लेकिन धीरे २ ये खुशियाँ दुखों में बदल गईं। जब प्रभात बी० ए० में पढ़ रहा था तो उसके पिता का व्यापार ठप हो गया। व्यापार ठप होने की चिंता में वे दिन-२ घुलने लगे। यहाँ तक कि उन्हें क्षय रोग हो गया और वह मर गये। क्षय का प्रभाव पूर्णिमा पर भी हुआ और वह अन्धी हो गई। अब सारे घर की समस्या प्रभात के ऊपर आ पड़ी।

प्रभात ने बी० ए० पास किया और नौकरी की तलाश में दर-बदर ठोकें खाने लगा। आज भी वह नौकरी की तलाश में गया था और उदास मन से घर की तरफ आ रहा था। उसके कदम धीरे-२ बोझिल होते जा रहे थे। घर के दरवाजे पर आकर उसने दरवाजा खट-खटाया। घर के अन्दर से अंधी बहन रास्ता टटोलती हुई आई और किसी तरह से दरवाजा खोला। जैसे ही प्रभात अन्दर आया उसने बिना साँस छोड़े पूछा, "माँ कहाँ है?" बहन ने कहा, माँ बीमार है तथा मुझको बहुत भूख लगी है।" अब तो प्रभात से न रहा गया। वह सीधे बिस्तर

पर लेट गया और बहन भी चुप-चाप सो गई। प्रभात सोचने लगा, “क्या इस संसार में बी०ए० के लिए कोई स्थान नहीं है। क्या प्रभात के लिए कोई भी नौकरी इस देश में नहीं है। उसका हृदय बार-बार मुँह को आ रहा था। रह-र कर वह आँसू बहा रहा था अन्त में जैसे उसे कुछ याद आया और वह प्रसन्न हो उठा। उसके आँसू बन्द हो गये। वह विचार-धाराओं में गोते लगाते हुये पता नहीं कब सो

गया। जब उसकी नींद खुली तो सूर्य का प्रकाश चारो तरफ फैल उठा था। उसने माँ को बताया कि उसे नौकरी मिल गई है। माँ बहुत प्रसन्न हुई। वास्तव में प्रभात ने सोचा था कि वह रिक्शा चलायेगा। माँ आटा उधार माँग लाई क्योंकि उसका बेटा आज नौकरी करने जायेगा। प्रभात के चलते समय उसने उससे कहा, “कुछ आटा, दाल अवश्य ले आना।”

- ❖ मन ही मनुष्य के बन्धन एवं मोक्ष का कारण है। —योग वासिष्ठ
- ❖ सत्य मेरी माता, ज्ञान पिता, धर्म भाई, दया मित्र, शान्ति पत्नी और क्षमा पुत्र। यही छः मेरे बांधव हैं। —चाणक्य
- ❖ कमजोरी सबसे बड़ा पाप है। —विवेकानन्द
- ❖ आलस्य जीवित मनुष्य की कब्र है। —कपूर

परमाणु-संरचना

-विनीत कुमार देवरा ९ ख

रसायन विज्ञान

[विगत १८ मई १९७४ को हमारे देश के पोकरण (राजस्थान) नामक स्थान में डा० सेठना के नेतृत्व में सफल भूमिगत परमाणु परीक्षण हुआ। उसे समझने से पूर्व इस प्रारम्भिक कड़ी को जानना भी आवश्यक है।]

परमाणु :- किसी पदार्थ का छोटा सा कण जो अविभाज्य है। परमाणु कहलाता है। परमाणु रासायनिक क्रिया की इकाई होती है।

परमाणु के मुख्यतः दो भाग होते हैं :-

१. नाभिक
२. नाभिक का बाह्यतम भाग

नाभिक :- परमाणु का केन्द्रीय भाग, नाभिक परमाणु के केन्द्र में स्थित एक भारी भाग होता है। इसके चारों ओर ऋण आवेशित कण जिन्हें इलेक्ट्रॉन कहते हैं, बड़े वेग से विभिन्न कक्षाओं में परिक्रमा किया करते हैं।

नाभिक के अन्तर्गत दो भाग पाये जाते हैं।

१. प्रोटॉन
२. न्यूट्रॉन

प्रोटॉन :- इस प्रकार के कणों में घनावेश होता है। इन कणों का भार ज्ञात करने से पता चलता

है कि इनका भार H तत्व के एक परमाणु के भार के बराबर होता है। अर्थात् "प्रोटॉन परमाणु का ऐसा कण है जिसमें ईकाइ घन आवेश होता है। और इसका भार लगभग H तत्व के परमाणु के भार के बराबर होता है।"

'मोजले' ने यह बताया कि परमाणु के ऊपर उपस्थित प्रोटॉनों की संख्या को ही 'परमाणु-क्रमांक' कहते हैं।

न्यूट्रॉन :- चाडविक ने सर्वप्रथम १९३२ में इन कणों की खोज की और इन्हें न्यूट्रॉन कहा।

"न्यूट्रॉन एक उदासीन कण है इस पर किसी प्रकार का विद्युत आवेश नहीं होता तथा इसका भार प्रोटॉन के भार के बराबर होता है।"

ये दो प्रकार के कण किसी अज्ञात बल द्वारा आपस में जुड़े रहते हैं। इसी कारण से इनको

अलग-अलग करने में बहुत कठिनाई पड़ती है।

नाभिक का बाह्यतम भाग :-इलेक्ट्रान परमाणु के ऐसे कण हैं जिसमें विद्युत का ऋण आवेश होता है। इलेक्ट्रान बहुत ही छोटे कण होते हैं एक इलेक्ट्रान की संहति H तत्व के एक परमाणु भार का $1/1836$ भाग होता है। इसकी परिभाषा हम निम्नलिखित रूप में दे सकते हैं :-

“इलेक्ट्रान परमाणु का एक अनिवार्य कण है। इस पर इकाई ऋण आवेश होता है और H तत्व के भार का $1/1836$ होता है।”

प्रोटान की संख्या = परमाणु संख्या

परमाणु भार = प्रोटान की संख्या + न्यूट्रान-संख्या

न्यूट्रान की संख्या = परमाणु भार - प्रोटान की संख्या

कक्षों में इलेक्ट्रान निम्नलिखित सूची-अनुसार

वितरित होते हैं :-

२ य^३ जहाँ य = कक्ष की संख्या है।

परन्तु अन्तिम कक्ष में ८ से अधिक इलेक्ट्रान नहीं हो सकते हैं।

परमाणु के भीतरी भाग को धन आवेश युक्त और उसके बाहरी भाग को ऋण आवेशयुक्त इलेक्ट्रानों से बना हुआ माना जाता है जो भीतरी धन आवेश युक्त भाग के आस-पास रहते हैं। रदर फोर्ड ने नाभिक सिद्धान्त को जन्म दिया।

१. किसी परमाणु का समस्त धन आवेश उसके केन्द्र में स्थित रहता है। जिसे परमाणु कहते हैं।

२. इलेक्ट्रान केन्द्रों के बाहर चारों ओर घूमते हैं परमाणु विद्युत-उदासीन है। इसलिए इलेक्ट्रानों का पूर्ण आवेश केन्द्र के धन आवेश के विपरीत होता है।



❖❖❖ 'अंतरिक्ष में मानव' ❖❖❖

विनोद कुमार शर्मा (संस्कृत)

[अत्यन्त बोधात्मक वैज्ञानिक लेख है। लेखक की विश्लेषणपरक बुद्धि ने उसे और ठोस बना दिया है।]

आज मानव अंतरिक्ष में भी पदार्पण कर चुका है। राकेट (यान) के द्वारा तो मानव एक बार ही नहीं बल्कि कई बार चन्द्रमा पर जाकर सकुशल वापस लौट आया है।

जहाँ पर पृथ्वी का वायु मंडल समाप्त हो जाता है वहीं से अंतरिक्ष का प्रारम्भ हो जाता है। पृथ्वी का वायु मंडल १०० किमी० ऊपर तक ही फैला हुआ है, और वहीं से अंतरिक्ष का प्रारम्भ हो जाता है। १०० किमी० के बाद यह माध्यम इतना विरल हो जाता है कि इसे निर्वात तुल्य ही कहा जाना उचित है। अर्थात् अंतरिक्ष का प्रारम्भ पृथ्वी तल से १०० किमी० की ऊँचाई से है। अंतरिक्ष का न आदि है, न अन्त है।

वास्तव में अंतरिक्ष युग का प्रारम्भ ४ अक्टूबर १९५७ को हुआ जबकि रूस ने अपना प्रथम कृत्रिम उपग्रह 'स्पूतनिक-१' पृथ्वी की कक्षा में छोड़ा था। अमेरिका ने अपना प्रथम कृत्रिम उपग्रह 'एक्स प्लोरर-१' ३१ जनवरी १९५८ को छोड़ा था। रूस के अन्तरिक्ष यात्री गगारिन को १२ अप्रैल १९६१ को 'वोस्तोक-१' यान के द्वारा अंतरिक्ष के प्रथम यात्री बनने का श्रेय प्राप्त हुआ। अंतरिक्ष की खोज करने के बाद मानव में अन्य ग्रहों व नक्षत्रों की खोज करने की इच्छा जाग्रत हुई। इसलिए

मानव ने अपना लक्ष्य अपने निकटतम पड़ोसी चन्द्रमा को बनाया।

सर्व प्रथम २१ जुलाई १९६९ को नील आर्म स्ट्रांग तथा एडविन एलड्रिन अपोलो-११ के द्वारा चन्द्रमा पर पहुँचे। अपोलो-१२, १४, १५, १६, १७ के द्वारा अनेक अंतरिक्ष यात्री चन्द्रमा पर पहुँचे। अमेरिका ने अपने अंतरिक्ष यात्रियों को चन्द्रमा पर उतार दिया, परन्तु रूस ने मानव रहित 'ल्यूना खोद' चन्द्रमा पर उतारी।

चन्द्रमा पर किये गये प्रायोगिक तथ्यों के अनुसार चन्द्रमा पृथ्वी का एक भाग नहीं है। बल्कि वह एक अलग ग्रह है। पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी २३८८०० मील है। चन्द्रमा पर पाये जाने वाले पर्वत लगभग ९ मील तक ऊँचे हैं। तथा चन्द्रमा का क्षेत्रफल ३६६५८२८ वर्गमील है। यह अपने स्वयं प्रकाशित नहीं है बल्कि यह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित है। शुक्र तथा मंगल ग्रहों पर भी अमेरिका तथा रूस अपने यान भेज चुके हैं। शुक्र एक रहस्यमयी ग्रह है। इसकी सतह सदा बादलों से आच्छादित रहती है। ये बादल जिनसे यह आच्छादित रहती है, स्वयं की सतह से १०० किमी० ऊपर तक छाये रहते हैं। शुक्र ग्रह का क्षेत्रफल ४५३८२८५७ वर्गमील है। इसमें कार्वन डाइ

आक्साइड गैस (CO₂) तथा नाइट्रोजन गैस (NO₂) और धूल के कण भी हैं। जिसमें कार्बन डाइ आक्साइड गैस की अधिकता है।

शुक्र पर अमेरिका से 'मेरिनर' तथा रूस से 'वेनेरा' प्रक्षेपित किये जा चुके हैं। रूस ने १५ दिसम्बर १९७० को 'वेनेरा-७' तथा २२ दिसम्बर १९७२ को 'वेनेरा-८' प्रक्षेपित किये हैं ये शुक्र के घरातल पर उतरने में सफल हुए। तथा पृथ्वी पर सकुशल लौट आये। इनसे प्राप्त तथ्यों के अनुसार शुक्र का घरातल रेतीला है वहाँ पर जल भी नहीं है तथा तापक्रम ८०० डिग्री फारेन हाइट से भी अधिक है। इसलिए वहाँ पर किसी भी प्रकार का जीवन सम्भव नहीं है।

मंगल ग्रह के विषय में भी खोजे जारी हैं। मंगल के निकट से अमेरिका के 'मेरिनर-४, ६, ७' गुजर चुके हैं। इनसे प्राप्त तथ्यों के अनुसार मंगल एक ठंडा ग्रह है। जिसके घरातल पर ज्वालामुखी पर्वत के मुख तथा दरारें विद्यमान हैं। यहाँ पर कार्बन डाई आक्साइड गैस बहुत है आक्सीजन तथा वाष्प की मात्रा सूक्ष्म है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि मंगल पर जीवन तो सम्भव है परन्तु वह निम्न कोटि का होगा। मंगल के कुछ और रहस्यों को जानने के लिए रूस ने स्वचालित यान 'मार्स-२' तथा 'मार्स-३' प्रक्षेपित किये थे। ये यान मई १९७१ में छोड़े गये तथा ६ मास से अधिक यात्रा के पश्चात् मंगल की परिक्रमा करने लगे थे। जिनमें 'मार्स-३' मंगल के घरातल पर भी उतरने में सफल हुये।

२ मार्च १९७२ को छोड़ा गया यान 'पायो-नियर-१०' १९८३, दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में बृहस्पति से गुजरेगा। यह परमाणु ऊर्जा से चलने वाला मानव रहित यान है।

बुध ग्रह सौर्य मंडल का सबसे छोटा ग्रह है। यह सूर्य के अति निकट होने के कारण वैज्ञानिक

इसकी तरफ से कुछ उदासीन है। यहाँ किसी भी प्रकार का जीवन सम्भव प्रतीत नहीं होता है। यूरेनस, नेप्ट्यून जैसे ग्रहों पर भी किसी प्रकार का जीवन सम्भव नहीं है। क्योंकि इनके वायु मंडल हाइड्रोजन, अमोनिया तथा मिथेन जैसी विषैली गैसों में बने हैं।

परन्तु कुछ वैज्ञानिक इन ग्रहों पर भी यान ले जाने का प्रयत्न कर रहे हैं। प्रारम्भ में यान ग्रहों के चक्कर लगाकर वापस लौट आयेंगे। प्रथम यान सम्भवतः, सितम्बर १९७७ में पृथ्वी से उड़ान भरेगा जो बृहस्पति से मार्च, १९७९ को, नवम्बर, १९८० को शनि से तथा १९८६ में प्लूटो की सीमा में प्रवेश करेगा। द्वितीय यान सम्भवतः नवम्बर १९७९ में पृथ्वी से अपनी यात्रा प्रारम्भ कर, जून १९८१ को बृहस्पति से, तथा जनवरी १९८६ की यूरेनस से होता हुआ अगस्त १९८९ में नेप्ट्यून तक पहुँच जायेगा।

अंतरिक्ष में अभी तक ४००० से भी अधिक यान प्रक्षेपित किये जा चुके हैं कुछ तो सफल हुये, कुछ खो गये और कुछ नष्ट हो गये। विज्ञान ने यान बनाकर प्रक्षेपित करने में तो सफलता प्राप्त कर ली है परन्तु यदि यान में कुछ खराबी आ जाए तो उसके लिए पृथ्वी से राकेट प्रक्षेपित करने पड़ते थे। अब अंतरिक्ष इंजीनियरों ने योजना-नुसार यदि यान में कुछ खराबी आ जाए तो बिना किसी बाहरी सहायता के वही पर उसकी मरम्मत की जा सकती है।

गत मई १९७७ को अमेरिका के राष्ट्रीय वैज्ञानिक और अंतरिक्ष प्रशासन विभाग ने दो उपग्रह छोड़े थे। इनमें से एक उपग्रह ९० टी० एस०-६ (एप्ली केशन्स टेक्नो लाजी सेटे लाइटः अनुप्रयोग प्रौद्योगिकी उपग्रह) टेलीविजन के कार्यक्रमों को दूर के क्षेत्रों में प्रसारित करता है। तथा दूसरा प्रक्षेपित उपग्रह एस० एम० एस०-१ (सिन क्रोनस मेट्रो लाजिकल सेटे लाइटः

तुल्य कालिक मौसम उपग्रह), यह कैमरों से सुसज्जित है। जो मेघों के चित्र, विवरण सहित रात्रि में भी बिना किसी परेशानी के खींच सकता है। ये दोनों उपग्रह अंतरिक्ष में बहुत सफलता पूर्वक अपना अपना कार्य कर रहे हैं। किन्तु इन दोनों उपग्रहों के कारण अंतरिक्ष में प्रदूषण बढ़ रहा है, जिससे खगोलीय पिंडों के अध्ययन में बाधाएँ उत्पन्न होने लगी हैं। इन से इतनी अधिक इलेक्ट्रानिक बाधाएँ उत्पन्न हो रही हैं कि रेडियो-खगोलज्ञ, खगोलीय पिंडों के रेडियो-संकेतों को बिलगाने में असमर्थ हो जाते हैं। वे एक प्रकार से अंधे हो जाते हैं।—मेरी लैंड-विश्वविद्यालय के एक ग्राउस रेडियो-खगोलज्ञ फ्रैंक जे० केर ने अमेरिका की राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की ओर से अंतरिक्ष में इलेक्ट्रानिक प्रदूषण का अध्ययन किया है। श्री केर का कथन है कि खगोलज्ञों के लिए इन दोनों उपग्रहों से बहुत अधिक इलेक्ट्रानिक बाधाएँ उत्पन्न हो रही हैं यदि ऐसे ही बीसियों उपग्रह अंतरिक्ष में विचरण करने लग जायें तो उनसे उत्पन्न इलेक्ट्रानिक बाधाएँ प्रलय कर देंगी।

उत्तरी अमेरिका के रक्षा कमान (नोराड) के अनुसार इस समय ३२०० से भी अधिक उपग्रह पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे हैं। जिनमें एक 'अटर्स' उपग्रह भी है यह उपग्रह अत्यन्त संवेदनशील उपकरणों की सहायता से १८ दिन में एक बार पृथ्वी के सम्पूर्ण घरातल का अवलोकन कर लेता है और उसके चित्र पृथ्वी को प्रेषित करता रहता है। यद्यपि इस उपग्रह का जीवन काल १ वर्ष का था; परन्तु १ वर्ष के बाद भी यह उपग्रह अपना कार्य सफलता पूर्वक कर रहा है। यह २३

जनवरी १९७२ को पृथ्वी की कक्षा में प्रक्षेपित किया गया था तथा प्रतिदिन ७५२ चित्र उतार कर घरातल—स्थित केन्द्र को प्रेषित करता रहता है। यह उपग्रह घरातल से ५६० मील की ऊँचाई पर परिक्रमा करता है। जब अटर्स-१ अपना कार्य करना बन्द कर देगा तो अटर्स-२ पृथ्वी की कक्षा में छोड़ दिया जायेगा; क्योंकि संसार के लगभग सभी भागों के वैज्ञानिकों ने अटर्स उपग्रह द्वारा पृथ्वी के घरातल का निरन्तर अवलोकन करते रहने में गहरी दिलचस्पी प्रकट की है।

घरातल के केन्द्र के अधिकारी ने उपग्रह की विशेषता बताते हुए कहा कि यदि इस ऊर्जा-संकट के काल में कोई देश अपनी धरती में, मौजूद तेल और कोयले या अन्य किसी खनिज पदार्थ के भंडार का पता लगाना चाहता है तो 'अटर्स' उपग्रह द्वारा खींचे गये चित्रों से तेल या अन्य खनिज पदार्थ की मौजूदगी का तो पता नहीं लग सकता परन्तु चट्टानों के आकार तथा पृथ्वी की रचना से बहुत कुछ आभास हो सकेगा कि तेल या अन्य पदार्थों के भंडार कहाँ-कहाँ हैं।

मैं अपने विज्ञान के विद्यार्थियों से कहूँगा कि वे अपनी रुचि, विज्ञान के क्षेत्र में बढ़ायें और विज्ञान में उन्नति कर दूसरे देशों की तरह उपग्रह तथा राकेट आदि प्रक्षेपित कर भारत को भी विश्व में एक नई शक्ति के रूप में खड़ा कर दें। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं उसकी तरफ से पूर्णतया निश्चिन्त हूँ मेरी भी शक्ति इसी ओर लग रही है। इसी विश्वास के साथ मैं अपना लेख समाप्त करता हूँ।

एक परमाणु विशेषज्ञ, महान् वैज्ञानिक—

“डा० होमी जहाँगीर भाभा”

शैलेन्द्र कुमार दीक्षित ९ ख

[“डा० भाभा के रूप में भारतमाता ने एक बुद्धिमान, सचेत वैज्ञानिक को जन्म दिया; किंतु अल्प वयों में ही उस परमाणु-विशेषज्ञ को क्रूर काल ने चबा लिया।” देश के एक महान् परमाणु-विशेषज्ञ को अपित लेखक के श्रद्धासुमन !]

परमाणु शक्ति इस शताब्दी की सबसे बड़ी देन है। इसके आविष्कार से हमें अनेक लाभ हुए हैं। एशिया में भारत ही एक ऐसा अकेला देश है जहाँ परमाणु शक्ति के शान्तिपूर्ण प्रयोग किये गये हैं। परमाणु केन्द्र की असीमित शक्ति को नाभिकीय ऊर्जा कहते हैं। भारत में इस ऊर्जा के विकास का श्रेय डा० होमी जहाँगीर भाभा को है। उन्हीं के प्रयत्नों से भारत को विश्व के परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों की पंक्ति में खड़े होने का सौभाग्य मिल पाया है।

डा० भाभा का जन्म ३० अक्टूबर सन् १९१० को हुआ था। उनकी शिक्षा सत्रह वर्ष की आयु तक बम्बई के ‘जॉन कोनन हाई स्कूल’ में हुई। १९३० में उन्होंने ‘मैकेनिकल साइंसेज ट्राइपोस’ में बी०ए० की डिग्री प्राप्त की। कैम्ब्रिज (इंग्लैण्ड) में १९३२ से १९३४ तक आपको गणित में ‘बाल ट्रैवलिंग’ छात्र-वृत्ति मिलती रही; किन्तु आपकी रुचि इंजीनियरिंग से विज्ञान की ओर लपकी। आपने कुछ प्रमुख वैज्ञानिकों का साथ किया। सन् १९४१ में आप ‘रॉयल सोसाइटी’ के सदस्य चुने गये। उसी समय आपने एक अनुसंधान-शाला के निर्माण की योजना बनाई और इस योजना में

सर्वाधिक सहयोग दिया टाटा उद्योग ने। परिणाम स्वरूप टाटा अनुसंधान-शाला का निर्माण हुआ। इस स्थापना के बाद आपने भविष्य वाणी की कि—

“दो दशक बाद जब आवणिक शक्ति का उपयोग शक्ति के उत्पादन में किया जायेगा, तब भारत को विदेशी वैज्ञानिकों पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा”

बात सही भी हुई भारत सरकार की आँखें विदेशी वैज्ञानिकों पर लगी हुई थीं; किन्तु भाभा ने अपनी संगठन शक्ति के द्वारा तथा टाटा अनुसंधान से निकले हुये वैज्ञानिकों के आधार पर बहुत ही अल्प समय में ट्राम्बे अणु-भट्ठी का निर्माण कर डाला। इस भट्ठी का नाम ‘अप्सरा’ रक्खा गया। डा० भाभा का जीवन-इतिहास परमाणु शक्ति का इतिहास है। अप्सरा परमाणु-भट्ठी से आरम्भ करके, ऐसी अवस्था में पहुँच गये हैं जबकि हम थोड़े दिनों बाद ‘रेडियो आइसोटोप्स’ का निर्यात सबसे अधिक मात्रा में कर सकेंगे। डा० भाभा भौतिकी तथा विशेष रूप से ब्रह्माण्ड किरण में अनुसंधान करने के लिए बड़े प्रसिद्ध हुए। ब्रह्माण्ड किरणों के अनुसंधान के बाद डा० भाभा ने परमाणु-

शक्ति में काफी महत्वपूर्ण अनुसंधान किया।

हमारे देश की परमाणु-शक्ति-विभाग की स्थापना अगस्त १९५४ में हुई। तब से इस क्षेत्र में भारत में ही नहीं, विश्व के अनेक देशों में प्रगति हुई है। भारत में परमाणु-शक्ति-अनुसंधान का मुख्य केन्द्र बम्बई के पास ट्राम्बे है। इस केन्द्र को परमाणु-शक्ति-संस्थान कहते हैं। इस केन्द्र का उद्घाटन प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने २० जनवरी १९५७ को किया था। डा० भाभा इस केन्द्र के संचालक थे। यह केन्द्र सारे पूर्व में अपने कार्यों के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ भारतीय तथा विदेशी छात्रों को ट्रेनिंग दी जाती है। डा० भाभा तथा उनके साथी वैज्ञानिकों को इस केन्द्र को इतना अच्छा बनाने का श्रेय है। उनका कहना था कि "परमाणु-शक्ति के प्रयोग से ही देश का भला है।"

जिनेवा में १९५५ में विश्व को प्रथम परमाणु-शक्ति-सम्मेलन हुआ जिसकी अध्यक्षता डा० होमी भाभा ने की थी। अपने भाषण में डा० भाभा ने विश्व के वैज्ञानिकों को यह कहकर चकित कर दिया था कि "हाइड्रोजन की शक्ति को नियन्त्रित करके विश्व की बिजली की समस्या हल हो सकती है। हाइड्रोजन भारी मात्रा में समुद्र में जमी है। इसलिये हम समुद्र के पानी से बहुत बिजली बना सकते हैं। यह विश्व का सबसे बड़ा वैज्ञानिक सम्मेलन था। इसको सफल बनाने का श्रेय डा० होमी जहाँगीर भाभा को ही है। डा० भाभा ने अनेक विदेशी वैज्ञानिकों के सहयोग में काम किया। १९३७ में डा० हीटलर के सहयोग से उन्होंने "कास्केड थ्योरी आफ इलैक्ट्रान शावर्स" की खोज की। इस सिद्धान्त से ब्रह्माण्ड-किरणों, उच्च शक्ति के ऋणाणुओं (इलैक्ट्रान) तथा 'गामा' किरणों के बारे में बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है। डा० भाभा ने एक नये प्रारम्भिक कण की खोज की जिसका नाम उन्हीं के सुझाव पर 'मीसान' (Meson) रक्खा गया।

परमाणु शक्ति के शान्ति कालीन प्रयोगों के सम्बन्ध में डा० भाभा के विचार बिल्कुल स्पष्ट थे। वह परमाणु-बमों के निर्माण या परमाणु अस्त्रों के निर्माण में बिल्कुल सहमत न थे। डा० भाभा का कहना था कि परमाणु-शक्ति के प्रयोग में भारत का भविष्य अति उज्ज्वल होगा; क्योंकि हमारे देश में केरल के तट पर भारी मात्रा में परमाणु-खनिज मोनोजाइट है। केरल-तट पर ही एक लाख टन थोरियम का भंडार है। थोरियम भी परमाणु-सामग्री है। और इससे परमाणु-शक्ति का उत्पादन किया जा सकता है। डा० भाभा ने भारत में परमाणु शक्ति से बिजली बनाने के लिये एक पन्द्रहसाला योजना तैयार की, जिसमें भारत अपनी बिजली की जरूरतों में आत्म-निर्भर हो जायेगा। डा० भाभा का दृढ़ विश्वास था कि विज्ञान की शिक्षा हमारे राष्ट्रीय जीवन का एक अंग होनी चाहिये।

आश्चर्य की बात है कि इतने शासकीय संगठनीय तथा योजना सम्बन्धी कार्यों में व्यस्त रहने पर भी डा० भाभा भौतिकी अनुसंधान के लिये समय निकालते थे। उनका कहना था कि विज्ञान ही आज का दर्शन-शास्त्र है। वे कहा करते थे कि "देश में परमाणु शक्ति का कार्य पूरा करने और उसका आधार पूरा करने के बाद मैं देश में विज्ञान की प्रगति की ओर अपना समय तथा शक्ति लगाऊँगा।" देश में बिजली की कमी है। हमारे गाँवों में और कल कारखानों में बिजली की आवश्यकता है, जो परमाणु शक्ति से ही पूरी हो सकती है। अब भारत में भी प्लुटोनियम संयंत्र बन गया है। जिससे परमाणु-बिजली-घरों के लिये प्लुटोनियम मिलने लगा है।

भाभा ने देश को शीघ्रातिशीघ्र उन्नति के सिखर पर चढ़ाना शुरू कर दिया था; लेकिन मेरे भारत का भाग्य ही खराब था। मेरी भारत माता ने एक बुद्धिमान, सचेत वैज्ञानिक को जन्म

दिया लेकिन अल्प वर्षों में ही उस परमाणु विशेषज्ञ को क्रूर काल ने चबा लिया। आज से लगभग आठ वर्ष पहले की बात है कि भारत के महान वैज्ञानिक डा० होमी-जहाँगीर भाभा विश्व-विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष होकर एक अन्तर्राष्ट्रीय विश्व सम्मेलन में भाग लेने के लिए वायुयान द्वारा बम्बई से वियना को जा रहे थे। दुर्भाग्य से वह जहाज माउन्ट ब्लाक से टकराकर चकनाचूर हो गया। रेडियो में जब यह समाचार आया कि डा० भाभा अब नहीं रहे। तब सभी नर, नारी व बच्चे शोकाकुल हो गये। डा० भाभा के निधन से भारत ने क्या खो दिया। इसका पता वर्षों बाद

लग पायेगा। अभी यह अनुमान लगाना कठिन है कि उनका स्थान कौन पूर्ण करेगा। उनके शिष्य डा० विक्रम साराभाई ने उनके बचे-खुचे कार्य को पूर्ण करने का प्रयास किया; लेकिन सन् १९६८ में संसार से वे भी विदा हो गये। फिर भी डा० रमन्ना और डा० सठेना ने अपने अपने महत्वपूर्ण प्रयासों द्वारा १८ मई सन् १९७४ को परमाणु-विस्फोट करके डा० भाभा का उद्देश्य लेकर आगे बढ़ रहे हैं।

डा० भाभा को हम कभी नहीं भूल सकते; क्योंकि उनका विज्ञान-दान आज के युग का महान दान तथा स्मरणीय है।

मनुष्य की हत्या एक तर्क-पूर्ण प्राणी-परमात्मा की प्रतिच्छाया का विनाश है; किन्तु किसी अच्छी पुस्तक को नष्ट करना स्वयं तर्क की हत्या करना है।
—जॉन मिल्टन

स्त्री हमें महान चीजों की ओर प्रेरित करती है; किन्तु उन्हें प्राप्त नहीं करने देती।
—अलेक्जेंडर ड्यूमर

करणीय का संकल्प करो और संकल्पित को करो।

—बेंजामिन फ्रैंकलिन

अन्धी शिक्षा और लक्ष्यहीन विद्यार्थी

— आनन्द मिश्र दशम

देश में शिक्षा-तंत्र का ढाँचा कुछ इस तरह का है जो मात्र लुंज-पुंज, बेलीस, देश की बिरासत से कटे हाड़-माँस के पुतले गढ़ने में ही समर्थ है। आवश्यकता है झूठी प्रतिष्ठा और खोखले आत्म-गौरव का जामा उतार फेंकने की।

प्रायः देखा जाता है कि पढ़ने में रुचि न होने पर भी विद्यार्थी आँख बन्द कर पढ़े चले जाते हैं, न विद्यार्थी और न उनके अभिभावक यह जानते हैं कि इसका परिणाम क्या होगा। ऐसी अन्धी शिक्षा जिसका कोई लक्ष्य ही नहीं, समय और धन का अपव्यय नहीं तो क्या है? ऐसा भी देखा गया है कि लड़का बुद्धिमान और पढ़ने का इच्छुक है पर पिता की हैसियत आगे पढ़ाने की नहीं है। ऐसी विपरीत स्थिति में यदि पढ़ाई बन्द करके लड़का पहले कोई नौकरी कर ले और बाद में प्राइवेट या इवनिंग कक्षाओं की सहायता से परीक्षाएँ पास करता रहे तो कोई बुराई नहीं वास्तव में लड़का परिवार की सहायता करने में गौरव ही महसूस करेगा।

हमारी आधुनिक शिक्षा प्रणाली का दोष यही है कि वह शिक्षित पर लक्ष्यहीन व्यक्ति तैयार करती है। समय और परिवार के लिये उपयोगी, कुशल और उत्तरदायी नागरिक नहीं ऐसे उच्च शिक्षित व्यक्ति जिनकी शिक्षा का कोई उपयोग नहीं, देश की अर्थ व्यवस्था पर भार नहीं तो और क्या हैं?

झूठी प्रतिष्ठा के फेर में दी गई शिक्षा घन

का अव्यय ही है, इस विषय में हमारे विद्यार्थी भी अपनी कोई जिम्मेदारी नहीं महसूस करते। हिन्दुस्तान एक गरीब देश कहलाता है और शायद निकट भविष्य में भी ऐसा ही कहलाता रहेगा। जब तक देशवासी धन और मानव-शक्ति का सही उपयोग नहीं सीखेंगे। यह अपमान सूचक शब्द हिन्दुस्तान का साथ तभी छोड़ेगा जब देश का हर व्यक्ति हर बच्चा गरीबी से लड़ने को तैयार हो जायेगा। व्यक्ति की दृढ़ता पर ही राष्ट्र की दृढ़ता आधारित है। जैसा कि विदेशों में होता है वहाँ के प्रत्येक व्यक्ति के सामने एक लक्ष्य है कि राष्ट्र को दृढ़ और समृद्ध बनाना है और वहाँ का बच्चा-बच्चा अपनी इस जिम्मेदारी को अनुभव करता है। वहाँ सभी अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिये खुद कमाते हैं, कोई किसी पर भार नहीं वहाँ दस कमाते हैं तो दस खाते हैं, हमारे देश में एक कमाता है और दस खाते हैं। वहाँ के लड़के-लड़कियाँ शिक्षा काल में भी छोटे-मोटे कार्य करके अपना पूरा खर्च निकालते हैं और परिवार को भी मदद देते हैं। हमारे विद्यार्थी पच्चीस वर्ष की उमर तक बाप के पैसे पर एँस करते हैं और विद्यार्थी-आन्दोलन की नारे-बाजियों में अपना समय गँवाते हैं, और यही युवक जब खुद कमाने-योग्य बनते हैं तो माँ-बाप की बात भी नहीं समझते

ऐसा गैर जिम्मेदार विद्यार्थी-वर्ग अन्य किसी वेश में शायद ही देखने को मिले ।

सबसे अच्छा तरीका यह है कि जब लड़का या लड़की हाई स्कूल की सीढ़ी पार कर लें तो माता-पिता उससे गम्भीरतापूर्वक बात-चीत करें और यह जानने की कोशिश करें कि अपनी इच्छा और रुचि क्या है ? वह आगे पढ़ना चाहता है या विशेष ट्रेनिंग लेकर कोई काम करना चाहता है ? यह पता लगाना कोई कठिन कार्य नहीं क्योंकि आज की आधुनिक पीढ़ी पहले से अधिक चतुर व तेज है तथा अधिकांश लड़के लड़कियाँ अपनी रुचि और महत्वकांक्षाएँ आसानी से प्रकट कर सकती हैं ।

अमरीका के टीचर्स कालेज ने कपास की मिल ली है । इसे कुछ विद्यार्थी नित्य चार घण्टे प्रतिदिन कार्य करके चलाते हैं । विद्यार्थियों को उनके अध्ययन के अनुसार कार्य दिया जाता है । इसी प्रकार हमारे देश में इस दिशा में कुछ विचार हुआ है । इस क्षेत्र में तिरुपति के श्री पद्मावती

महिला विद्यालय ने कुछ अच्छा कार्य किया है । शिक्षा के साथ-साथ कार्य करके कमाने की इस योजना से जो कि इस विद्यालय में प्रारम्भ हुई है, गरीब विद्यार्थियों को बहुत लाभ पहुँचा है । इसके साथ ही यह योजना श्रम की प्रतिष्ठा पर जोर देती है ।

कितने ही कैरियर ऐसे हैं जिनमें ऊँची पढ़ाई की जरूरत भी नहीं होती, जैसे दुकान चलाना, मैकेनिक कार्य, स्कूल में अध्यापन, टाइपिस्ट की नौकरी, फँक्टरी की नौकरी, प्रेस से सम्बन्धित कार्य में आमदनी भी कम नहीं तथा मैट्रिक से बी० ए० तक की शिक्षा से भी काम चल जाता है । पर इनमें से कुछ कैरियरों के लिये एक विशेष ट्रेनिंग की अवश्य जरूरत होती है । जो हाई स्कूल हायर सेकेंडरी और सीनियर कैंब्रिज के बाद भी ली जा सकती है ।

जिस दिन भारतवासी झूठी प्रतिष्ठा और खोखले आत्मगौरव का जामा उतार देंगे, इस देश का कायाकल्प हो जायगा ।

“ प्राचीन भारत में विज्ञान ”

नवीनचन्द्र, दशम

[विज्ञान केवल यूरोप की ही देन नहीं। वास्तव में हमारा भारत ही उसका मूल स्थान रहा है—लेखक ने तथ्यों को एकत्र कर लेख को प्रामाणिक बनाने का एक सराहनीय प्रयास किया है।]—सं०

आज से हजारों वर्षों पूर्व भारतवर्ष विज्ञान के क्षेत्र में काफी आगे बढ़ चुका था। २९ सवीं सदी विज्ञान का मध्यान्ह कही जाती है, आज तक विज्ञान के जितने रहस्य खोजे जा चुके हैं, उन सभी का वर्णन प्राचीन भारतीय ग्रंथों में अवश्य हुआ है।

यह बात सत्य है कि विज्ञान के क्षेत्र में पाश्चात्य देश हमसे आगे बढ़ गये हैं, किन्तु हमें यह भी न भूलना चाहिये कि हमारे पूर्वजों ने भी बड़ी बड़ी खोजें की हैं। ग्रंथों की चाल एवं उनकी स्थिति, नक्षत्रों का उदय होना एवं अस्त होना, इत्यादि बातें हमारे पूर्वजों की खोजें थीं। ग्रीक अथवा रोम और न जाने कितनी सभ्यताएँ बनी, मिटीं, किन्तु भारतीय सभ्यता बचा गयी, इसका कारण क्या है, तो यह बात आसानी से समझने की है कि उसका कारण वह वैज्ञानिक समाज संगठन है जो कि भारतीय ग्रंथों में भरा पड़ा है। यह कहना अतिशय न होगा कि भारतीय जीवन प्रणाली ही विज्ञान पर आधारित है। अनेकानेक मंत्र तो क्या, पूजा प्रणाली आदि असंख्य भारतीय प्रवृत्तियाँ हैं, जिनके पीछे विज्ञान कार्य करता है। वैज्ञानिक उनकी महत्ता भी स्वीकार करते हैं।

कुछ पाश्चात्य विद्वान भारतीय प्राचीन ग्रंथों को इतिहास नहीं मानते, उन्हें काल्पनिक संग्रह मानते हैं, (जिसे हम इतिवृन्त कह सकते हैं)। तो यह बात पूर्णतया असंगत है, अधिकांश बातें तो उसमें सत्य ही हैं। कारण यह है कि भारतीय मनीषियों ने विज्ञान के गूढ़ से गूढ़ विषयों को उपाख्यानों के रूप में ढाल दिया है, ताकि सामान्य जनवर्ग सरलतापूर्वक उन्हें समझ सके। उनकी वर्णन शैली ऐसी है कि उनके अर्थ निकलते हैं

परन्तु तत्कालीन स्थिति में उनकी व्याख्या भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण में होती थी।

कालांतर में लोगों ने मात्र ऊपरी बातों को ही पहचान कर व्याख्या करनी शुरू कर दी और उनके पीछे छिपा वैज्ञानिक रहस्य लुप्त हो गया। अब यदि पाश्चात्य विद्वान उन कथाओं पर सन्देह करें तो इसमें उन रचनाकारों का क्या दोष ?

उदाहरण के किये एक प्रसंग लिया जा सकता है। श्रीमद्भागवत गीता में, विष्णुपुराण में ऋग्वेद में 'इन्द्र एवं वृत्रासुर' संग्राम का काफी विस्तृत रूप से वर्णित है। इन्द्र और वृत्रासुर के मध्य हुये युद्ध में इन्द्र, वृत्र के शरीर को विकीर्ण कर देता है जिससे कि उसके शरीर से जल की धाराएँ निकल पड़ती हैं। (ऋग्वेद—अध्याय ४०। पृष्ठ ३२। ३)

“दास पत्नी रहि गोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः
पाणिनेवगावः।

अपा बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वा अप
तद्ववार ॥”

इसका अर्थ यह है कि अहि (वृत्र) के द्वारा रक्षित जल धाराएँ इस तरह हैं जैसे कि किसी ग्वाले द्वारा रक्षित गौवें। इन्द्र ने उसके शरीर को विकीर्ण कर के अब तक रक्षित धाराओं को मुक्त किया, फलतः जल वृष्टि हुयी।

वैज्ञानिक कहते हैं कि यह वर्षा विज्ञान है। इन्द्र' अर्थात् उष्मा' वृत्रासुर रूपी मेघ को चीर कर वर्षा करता है।

इसी प्रकार सौर किरणों में सात रंग प्राप्त होते हैं, यह बात न्यूटन से न जाने कितने वर्ष पूर्व भारतीयों ने उन रंगों को सूर्य के रथ के ७ घोड़ों के रूप में चित्रित किया है।

इसी प्रकार बहुत उदाहरण ऐसे हैं। एक अन्य उदाहरण भी देखने योग्य है।

(पद्मपुराण, सृष्टि खण्ड, अध्याय ४०)

“तत्त्व पद्मं पुरा भूतं पृथिवीरूपमुत्तमम्
यत्पद्मं सा रसा पृथिवीपरिचक्ष्यते।”

विष्णु की नाभि से जो कमल उत्पन्न हुआ, वह पृथ्वीरूप था। उसी पद्म को 'रसा' कहा गया कहा गया है। जब यह निश्चित हो गया कि वह पद्म ही पृथ्वी है तो स्पष्ट है कि विष्णु का तात्पर्य यहाँ 'सूर्य' से है, जिसके केन्द्र से पृथ्वी उपजी है। यह बात सभी वैज्ञानिकों को मान्य है कि पृथ्वी ही नहीं, अन्य सभी ग्रहों का जन्म सूर्य से हुआ है।

इसी प्रकार पुराणों में वर्णित है कि पृथ्वी का परिमाण ५० कोटि योजन है। आज का विज्ञान कहता है कि पृथ्वी का व्यास ८ हजार मील है, किन्तु पुराणों में परिमाण का तात्पर्य उसके आयतन से है। सामान्य रूप से यदि ११ = ३ माने तो पृथ्वी (गोला) का आयतन $\frac{4}{3} \times 3 \times ५०० \times ५०० \times ५०० = ५०,००,००,००,०$ (५०० करोड़ योजन होता है।

पुराणों के अनुसार चन्द्रग्रहण में राहु, चन्द्र को ग्रसता है। विज्ञान इस बात से सहमत नहीं है, उसके अनुसार पृथ्वी की छाया चन्द्रमा को ग्रस लेती है। ठीक है। परन्तु यह कौन नकार सकता है कि पृथ्वी की अचैतन्य छाया में भी कोई अद्भुत शक्ति है जो चन्द्रमा को मलीन करती है। अतः उपर्युक्त उदाहरणों को देखते हुये, हम इन तथ्यों को अविश्वसनीय नहीं कह सकते।

इसी प्रकार भारतीय ध्वनि-लेखन विज्ञान भी अद्वितीय है। ध्वनि की उत्पत्ति एवं उसकी विशेषता को विज्ञान के माध्यम से प्रकट करना उन्हीं के (पूर्वजों) बूते की बात थी। हिन्दी में प्रत्येक भिन्न वस्तु के लिये अलग शब्द है। और वह, व्यावहारिक ही है। मक्खी के स्वर को हिन्दी में मिनमिनाना कहते हैं और अंग्रेजी में 'मरमरिंग', तो स्पष्ट है कि हिन्दी का शब्द अधिक स्पष्ट रूप से उस स्वर को पहचानता है।

अब हम इसी प्रकार यदि मध्ययुग में उतरें तो अनेक प्रसिद्ध भारतीय राजाओं के यहाँ महा-

मनीषियों को पाते हैं जिन्होंने उच्चतम खोजों की हैं। ब्रम्हगुप्त, श्रीधराचार्य, चरक, सुश्रुत आदि के नाम इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं।

आचार्य आर्यभट्ट ने पृथ्वी के आकर्षण एवं उसके घूमने का पता लगाया था। बाराहमिहिर ने ग्रहों एवं नक्षत्रों के उदय तथा अस्त होने के समय एवं उनके सहारे भविष्यवाणी की थी जो आज भी खरी उतरती है। भास्कराचार्य द्वितीय ने 'सूर्य सिद्धांत' तथा 'लीलावती' ग्रंथों का प्रणयन किया जो आज भी 'गणित विज्ञान' की निधि हैं। उन्होंने यह भी बताया था कि पृथ्वी निराधार है, अन्य ग्रहों का आकर्षण उसे संतुलित किये हुये है। न्यूटन का 'गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत' न जाने कितने वर्ष पूर्व के इसी भारतीय की देन है।

चिकित्सा के क्षेत्र में चरक, सुश्रुत के नाम उल्लेखनीय है। संधान कर्म (प्लास्टिक सर्जरी) का आविष्कार सुश्रुत ने किया। भारद्वाज एवं अश्विनी कुमार ने विमान बनाने की प्रणाली अथवा विधि बतायी। आणविक ऊर्जा का प्रारम्भिक ज्ञान सर्व-प्रथम 'कणाद' को था। इसी प्रकार कृत्रिम तत्वांतरण की विधि का आविष्कार भारतीय रसायनज्ञ 'नागार्जुन' ने किया, जो आज के युग की सर्वाधिक विस्मयजनक घटना है। उन्होंने पारे को सोने में बदल कर दिखाया था। और भी दार्शनिक प्रणाली, एवं शून्य लगाकर लिखने की विधि का प्रयोग सर्वप्रथम भारतियों ने ही किया था। इसी प्रकार गणित के क्षेत्र में ग्रस्तमंद महावीर पद्मनाभ आदि वैज्ञानिक भारत में उत्पन्न हुये।

भारत से ही यह विज्ञान विदेशों में प्रसारित हुआ क्योंकि उन देशों में आज भी भारतीय सभ्यता के प्रमाण मिलते हैं। भारत का सिद्धांत शब्द अरब में 'सिदिनिन्द' कहा जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भले ही पश्चात्य देश अपने विज्ञान के बल पर स्वयं को बड़ा एवं महान् समझें, परन्तु हमें भी गर्व का अनुभव करना चाहिए-उस भंडार पर जिसे हमारे पूर्वजों ने श्रम पूर्वक भरा है। हमें उनके समक्ष लज्जा का अनुभव नहीं करना चाहिये।

❀ नाभिकीय ऊर्जा ❀

—जितेन्द्र कुमार कक्षा-१०

नाभिकीय ऊर्जा की सूत्रबद्ध परिभाषा यों हैं :—

“भारी परमाणु भार वाले परमाणुओं के विखण्डन से प्राप्त ऊर्जा” किन्तु इसकी उपायदेयता तो लेख पढ़कर ही ज्ञात होगी।”

जैसे-जैसे मानव जाति का विकास होता गया उसी प्रकार उसकी आवश्यकतायें भी बढ़ती गयीं। उसने उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये तरह-तरह के यंत्र बनाये तथा उनको चलाने के लिये ऊर्जा की आवश्यकता हुयी। वह तरह-तरह की ऊर्जाओं की खोज करता रहा। सर्व प्रथम उसने अपने कार्य को करने के लिये ऊर्जा के रूप में पशुओं का सहारा लिया। उसकी आवश्यकतायें और बढ़ीं। उनकी पूर्ति के लिये उसने कोयले को तथा तेल को जलाकर और भाप को ऊर्जा के रूप में प्रयुक्त किया। धीरे-धीरे ये यह पदार्थ भी पृथ्वी से खत्म होने लगे। भविष्य में उस पर ऊर्जा संकट न आये इसलिये उसने एक ऐसी ऊर्जा की खोज की जो सूक्ष्म पदार्थों से भी अपरिमित मात्रा में प्राप्त होती है। वह है नाभिकीय ऊर्जा (Nucleus Energy) जो आजकल सबसे बड़ी शक्ति के रूप में वैज्ञानिकों के सामने खड़ी है।

यह ऊर्जा भारी परमाणु भार वाले परमाणुओं के विखण्डन से प्राप्त होती है। परमाणु (Atom) की खोज सर्व प्रथम भारतीय वैज्ञानिक मर्हर्षि कणाद ने की थी। उन्होंने कहा था, “प्रत्येक पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म कणों से बना है।” जिसको उन्होंने ‘पीलव’ नाम दिया; परन्तु इसका श्रेय पाश्चात्य वैज्ञानिक जान डाल्टन को मिला।

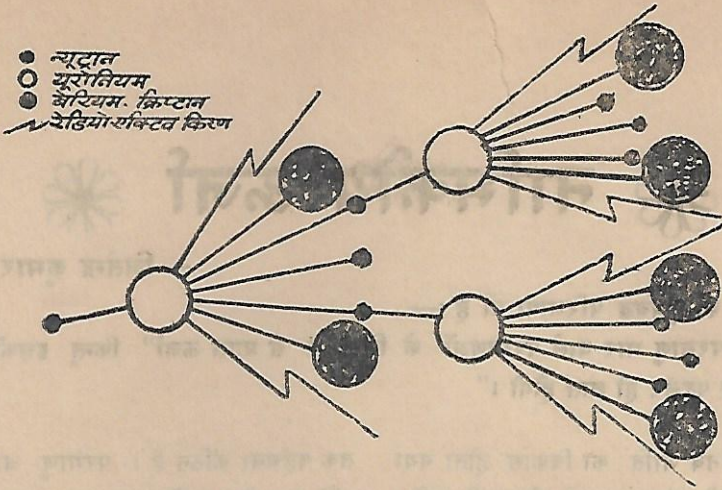
परमाणु एक अत्यन्त सूक्ष्म रचना है। यहाँ तक कि किसी साधारण मनुष्य की कल्पना वहाँ

तक पहुँचना कठिन है। परमाणु आज तक देखा नहीं गया है। इसके भार का अनुभव नहीं होता, परन्तु ऊर्जा का आगार है। इतने छोटे रूप में इतनी ऊर्जा होने के कारण इसने आज समस्त विश्व को अचम्भे में डाल दिया है। इसी ऊर्जा के बल पर रूस, अमेरिका विश्व की महा-शक्ति बने बैठे हैं। आज इसी से विनाश तथा सृजन के क्षेत्र में असम्भव कार्य भी संभव हो रहे हैं।

सर्व प्रथम सन् १९३९ ई० में दो जर्मन वैज्ञानिक हॉन तथा स्ट्राशमैन ने बताया कि यदि भारी परमाणु भार वाले परमाणु पर न्यूट्रॉनों की वर्षा कराई जाती है तो परमाणु खण्डित हो जाता है। इससे अपार ऊर्जा प्राप्त होती है। इसके लिये मुख्य रूप से उपयोग में लाये जाते हैं यूरेनियम, प्लूटोनियम आदि।

जब यूरेनियम U_{92}^{235} पर मन्द गति

न्यूट्रॉनों की वर्षा की जाती है तो नाभिक विखण्डित हो जाता है। α β γ में से कोई दो किरणें नकलती हैं। क्रिप्टान (kr) तथा बेरियम (Ba) तत्वों का निर्माण होता है। अपार ऊर्जा उत्पन्न होती है। यह क्रिया एक घमाके के साथ होती है। इस क्रिया में मिनट का लाख वाँ भाग लगता है। तीन न्यूट्रॉन मुक्त होते हैं जो अन्य नाभिकों को तोड़ते हैं। इस प्रकार एक के बाद एक नाभिक विखण्डित होकर ऊर्जा प्रदान करते हैं।



इससे प्राप्त ऊर्जा की मात्रा ज्ञात करने के लिये आइंस्टीन ने $E = mc^2$ का समीकरण दिया। यहाँ $E =$ ऊर्जा (Energy), $m =$ द्रव्यमान, (Mass) $c =$ प्रकाश का वेग (Velocity of Light) (3×10^{10} मील/से०), इस समीकरण से पता लगता है कि १ ग्राम यूरेनियम के बिखण्डन से 8×10^{13} कैलोरी ऊष्मा तथा 9×10^{10} अर्ग ऊर्जा उत्पन्न होती है। १ पाँड U_{235} के बिखण्डन से ११,००० करोड़ वाट विद्युत प्राप्त होती है। जिसके द्वारा एक प्रेस (इस्त्री) १० लाख वर्ष तथा एक कार पृथ्वी के के $3,60,000$ चक्कर लगा सकती है। विश्व का सबसे बड़ा तेल-वाहक पृथ्वी के 400 चक्कर लगा सकता है।

इतना होते हुये भी यह ऊर्जा यदि अनियंत्रित है तो हमको भारी हानि हो सकती है। परन्तु यदि नियंत्रित है तो असम्भव कार्य भी सम्भव हो सकते हैं। इस पर नियंत्रण कैडमियम की छड़ों से किया जाता है।

नियंत्रित ऊर्जा हमारे अत्यन्त काम की है। इसके द्वारा हम विद्युत बना सकते हैं। आज विद्युत बनाने में जहाँ कोयले तथा तेल का भारी खर्च होता है वहाँ हम परमाणु विस्फोट कर ऊष्मा उत्पन्न कर जल को भाप में बदल सकते हैं। भाप से

टरबाइन तथा टरबाइन चलाकर विद्युत प्राप्त कर सकते हैं। इसके द्वारा बाँध बना सकते हैं। जहाँ डाइनामाइट में इतने रासायनिक पदार्थ लगते हैं, जिनसे भी पहाड़ तोड़ने में कठनाई पड़ती है, वहाँ थोड़ी सी यूरेनियम की मात्रा को विस्फोट करके पहाड़ आसानी से तोड़ सकते हैं। नहरें बना सकते हैं तथा भूमिगत विस्फोट करके खनिज प्राप्त कर सकते हैं।

भारत में भी अभी हाल में ही परमाणु विस्फोट हुआ। यह विश्व का सबसे सफल परमाणु विस्फोट था। हमारे वैज्ञानिकों ने कहा कि हम इसका उपयोग देश की वृद्धि में करेंगे। फिर भी कुछ लोगों ने कहा कि भारत ने यह गलत किया। वह कहते हैं कि हीरोशिमा और नागासाकी नगर भी इसी से ध्वस्त हुये हैं। विज्ञान एक तेज धार वाले चाकू के समान है। जहाँ हम आत्म रक्षा के लिये दूसरों को मार सकते हैं वहीं अगर भूल से यह हमारे पाँव पर गिर गया तो उसको भी घायल कर सकता है। वह इजराइल को क्यों भूल जाते हैं। जिसने अपने मरुस्थलों को खेतों में तथा समुद्र के खारे जल को पीने योग्य जल में परिणित कर लिया है। वह आज पूरे अरब राष्ट्रों से लड़ने की सामर्थ्य रखता है, किसके बल पर? इसी परमाणु शक्ति के सहारे। इसी के सहारे आज विश्व में

उसका भी अनोखा स्थान है।

भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय परमाणु शक्ति के अध्यक्ष अध्यक्ष डॉ० होमी जहांगीर भाभा बनें। उन्होंने कहा कि भारत १८ माह में परमाणु बम बना सकता है। यह सुनकर विश्व के समस्त देशों में खलभली मच गयी और हवाई दुर्घटना कराकर उनकी हत्या करा दी गयी। हमारे नेताओं ने कहा कि दुर्घटना के कारण उनकी मृत्यु हो गणी। मैं कहता हूँ कि यह बात पूर्णतया झूठ है। उनकी मृत्यु करायी गयी थी - वह राजनीतिक हत्या थी। उसके पश्चात् अध्यक्ष बनें डा० विक्रम साराभाई, ३०-१२-१९७१में उनकी मृत्यु हो गयी। उनका शव उनके कमरे में पाया गया। मेरे विचार से उनकी भी हत्या करायी गयी थी। अब अध्यक्ष बनें हैं डा० होमी नौशेखान सेठना। उन्होंने तथा डा० राजा रमणना ने मिल

कर डा० भाभा के स्वप्नों को पूरा किया। कहीं ऐसा न हो कि हमारे ये युवा वैज्ञानिक भी इसके

यदि आज हम अपने मरुस्थलीय भागों को खेतों में, समुद्र के पानी को पीने वाले पानी में बदलना चाहते हैं, आत्म निर्भर होना चाहते हैं तो नाभिकीय शक्ति का सहारा लेना पड़ेगा। भाभा की मृत्यु के पश्चात् अनेक भाभा हुये परन्तु उनको अपनी खोज के लिए साधन नहीं उपलब्ध हुये और उन्होंने विदेशों में खोज की। हमारी सरकार को चाहिये कि वह अपने भावी वैज्ञानिकों को आवश्यक साधन उपलब्ध करावे जिससे वह विदेश जाने की स्वप्न में भी कल्पना न करें, और हम विद्व के समक्ष एक बार पुराने गौरव के साथ फिर खड़े हो सकें।



गाँधी : मेरा निजी मूल्यांकन

—हेमन्त कुमार दीक्षित

[कवि के अन्तर्भूत में उद्वेलित, कतिपय तथ्य-पूर्ण उद्गार, जिन्हें कवित्व के चोले ने और अधिक उजागर कर दिया है ।]

मैं नहीं जानता कि वे
जिन के लिए सावरमती-आश्रम से शुरू होकर
'गाँधी-शताब्दी-समिति' तक का सारा परिवेश-
सिर्फ एक कूची रहा हो
आजाद देश के काले सचों को
झग सफेदी से झुठलाने के लिए,
या फिर एक मरहम रहा हो
संविधान के कराहते जख्मों पर लगाने के लिए;
मैं नहीं जानता कि वे
इस समय किस ओछे नाटक के सूत्रधार हैं !

× × ×

लेकिन वे एक-एक कर
कल तक मेरे पास आते रहे थे ।
उन्होंने एकदम टकराव की भाषा में
पूछा था शायद—
क्या चाहिए तुम्हें ?
मैंने भी प्रश्न उछाला था—
—क्या दे सकते हैं आप ?
और वे एक पेंसिल थमा गये थे मुझे;
बोले—गाँधी पेंसिल है
इससे बने हुए स्केल 'अहिंसक' हो जाते हैं !

× × ×

वे दुबारा इतनी जल्दी आ गये थे
कि मन के कैनवस पर

मैं कोई भी स्केच नहीं बना पाया था—
 सत्याग्रह का भी नहीं,
 अहिंसा का भी नहीं,
 निष्क्रिय प्रतिरोध का भी नहीं !
 इस बार उनके पास रबर थी
 जिसे वे 'गांधी रबर' उच्चारित करते थे ।
 वे चाहते थे कि मैं उस गांधी-रबर से
 गांधी पेंसिल द्वारा खींचे गये स्केच मिटाऊँ !
 क्योंकि वे स्केच—

सन् १९४७ के पूर्व के थे,
 ईमानदार थे,
 खून और पसीना थे,
 और उन्हें खींचने वाली पेंसिल
 जलियाँ वाला बाग में बनी थी ।
 लेकिन रबर वे इधर आजादी के
 सत्ताइस बरसों में बना पाये थे—
 सुविधा की फैक्टरियों में,
 अवसरवाद की मशीनों से,
 पदलोलुपता के संयंत्रों से !
 और वे मुझसे
 एक अदने से नागरिक से
 यह अपेक्षा करते थे
 कि स्केच मिटाने का उपक्रम मैं करूँ !
 इस सारे तमाशे में वे
 सिर्फ निर्णायक रहेंगे
 और बाद में शायद
 हमने भी बाँट देंगे !

× × ×

औचित्य इसका नहीं मानता
 कि गांधी के नाम पर
 संहिताएँ हैं,
 स्टेच्यू हैं,
 संग्रहालय हैं,
 शोधकर्त्ता हैं,
 लिटरेचर हैं,
 जीनियस हैं !
 तुम अगर मुझसे मूल्यांकन करवाना चाहते हो

तो फिर मेरे मापदण्ड लाओ ।
 वे मँहगे नहीं हैं,
 'इम्पोर्टेड' अथवा 'स्मगलड' भी नहीं हैं !
 उनमें सिर्फ एक घोती है—
 चरखे की कमाई,
 दो चप्पलें हैं,
 एक कमर में बाँधने वाली घड़ी है,
 एक कसानीदार चश्मा है,
 और एक लाठी है !
 इन सबको मिलाकर
 तुम एक चरित्र खड़ा कर सकते हो रातों-रात,
 और इस चरित्र से तुम चाहो तो
 बाँध बनवा सकते हो
 जिनमें दरारें नहीं पड़ेंगी !
 या कि सड़कें बनवा सकते हो
 जिनके सीवर हरदम ठीक रहेंगे !
 या कि स्कूल-कालेज खुलवा सकते हो
 जहाँ हाथीदाँत की मीनारों में
 कैद नहीं रहेगा ज्ञान !
 और जहाँ से डिग्रियों की कूबड़
 पीठ पर लादे हुए
 बाहर नहीं आएगा 'स्नातक' !!

× × ×

हाँ, याद रखो
 कि यह चरित्र
 तुम्हें कोई ऐसी कूँची नहीं देगा
 जिससे कि तुम आजाद देश के काले सचों को !
 झग सफेदी से झूठला सको,
 या कि कोई ऐसा मरहम नहीं देना
 जिसे तुम संविधान के कराहते जख्मों पर लगा सको;
 यह चरित्र यदि तुम्हें कुछ देगा
 तो वह होगा
 एक छोटा सा शब्द :
 'स्वराज्य !'
 और सच मानो
 जब तुम इस शब्द को
 ब्राह्म-बेला में
 वेद-मंत्र की तरह बुद बुदाओगे
 तो उसमें से
 अमृत निकलेगा—
 छन-छनकर !!

वार्षिक-आख्या (१९७४-७५)

गुरु पूर्णिमा १८ जुलाई १९७० प्रातः ७ बजे अपना यह विद्यालय, २५ बच्चों एवं ३ गुरुओं के साथ केवल षष्ठ कक्षा के रूप में प्रारम्भ होकर, अनेक प्रकार की स्वाभाविक-अस्वाभाविक समस्याओं को झेलते-सुलझाते हुए, आज १५ मार्च १९७५ को एक उत्साहयुक्त किशोर के रूप में खड़ा मुस्कुरा रहा है और यह कह रहा है कि उत्साह और धैर्य मनुष्य को कौन ऐसे फ़ट हैं, जो नहीं प्राप्त करा सकते ।

आज हम ३१४ विद्यार्थियों, १५ आचार्यों एवं प्रशासनिक अधिकारियों-कर्मचारियों के साथ दशम कक्षा के प्रथम दल को, प्रेरणापद विदाई दे रहे हैं कि वे अपने प्रेरणा-स्रोत एवं चिंताशील अभिभावकों की आशाओं को आशातीत सफलता का वरण करें और कह दें कि हम आज के चलते-फिरते बाजारू Student नहीं । दीनदयाल विद्यालय के छात्र और देश के आशादीप हैं ।

हमारा पुस्तकालय भी अपने क्रोड़ में २००० विविध उपादेय ग्रंथों को सँजोये सतत आह्वान करता रहता है कि “जिज्ञासुओ ! आओ, अपनी ज्ञान-पिपासा को तृप्ति दो ।” वाचनालय की ९ मासिक, १ पाक्षिक, ५ साप्ताहिक पत्रिकायें तथा दो दैनिक पत्र देश के नवीनतम परिवर्तनों से अभिन्न रखने हेतु मर्यादित ढंग से हमारी सहायता के लिए सन्नद्ध रहते हैं । इन विभागों के लिए हमने अन्य विद्यालयों की भाँति कोई अतिरिक्त वेतन-भोगी कर्मचारी न लगाकर अपने ही आचार्यों एवं बच्चों के द्वारा मुचारु रूप से चलाने की उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त की है ।

हमारी विज्ञान-शिक्षा अधिकांश प्रयोगों पर निर्भर है । इस हेतु ३ वृहदाकार भरी-पुरी प्रयोगशालायें, अपने विज्ञानाचार्यों एवं शिष्ट छात्रों की कार्य-कुशलता को पूरा सहयोग देती हैं । उनकी स्वच्छता एवं व्यवस्था भी कोई अन्य वेतन-भोगी कर्मचारी से करवाना हमारे कर्मठ गुरुओं और विद्यार्थियों ने उचित नहीं समझा । अतः स्वयं ही उन्होंने उनको अपने कर्तृत्व से जो भव्यरूप प्रदान किया है—देखते ही बनता है ।

हमारे विद्यालय के इस विशाल भवन में ही ऊपर के खण्ड में एक व्यवस्थित छात्रावास है, जिसमें, अपने प्रदेश के विभिन्न अंचलों से ही नहीं, वरन् देश के विभिन्न प्रांतों, यथा पंजाब, बिहार, अरुणाचल आदि प्रदेशों से आये हुए ६२ विद्यार्थी विकसित हो रहे हैं । इसकी देख-रेख, महाराष्ट्र प्रदेश के एक मुख्य अधीक्षक, केरल प्रदेश के एक अनुभवी चिकित्सक एवं उत्तर प्रदेश के चार सहायक अधीक्षक बड़ी तत्परता एवं कुशलता के साथ करते हैं ।

विद्यालय के मध्य में विशाल-कक्ष के मंच पर अवस्थित एक भव्य संगमरमर के मंदिर में अत्यन्त आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक पवन-पुत्र भगवान् हनुमान की प्रतिमा है, जिसके समक्ष प्रति मंगलवार को किसी न किसी अधिकारी विद्वान के द्वारा ‘राम-कथा’ पर सायंकाल प्रवचन होता है और उसमें छात्रावास के सभी छात्र, अधीक्षक एवं अन्य अनेक रसिक राम-भक्त भाग लेते हैं । इस प्रवचन-कार्यक्रम का प्रमुख रूप से निर्वाह डा० हरिशंकर जी शर्मा

ही० लिट्० ही कर रहे हैं। इन प्रवचनों का परिणाम यह है कि बच्चे रामायण एवं गीता के मंत्रों को अभी से बहुत कुछ समझने लगे हैं।

विद्यालक्ष के ठीक पीछे बने संतरण-सरोवर का उपयोग भी इस वर्ष प्रारम्भिक रूप में प्रारम्भ हो गया है। विद्यालय के आसपास स्थित चार छोटे-बड़े क्रीडाङ्गणों का उपयोग, छात्रों के शारीरिक विकास के लिये, हमारे विविध खेलों में पारंगत शिक्षक सतत सचेष्ट रहकर किया करते हैं।

जहाँ तक कक्षा-शिक्षण और पाठ्यक्रमेतर गति-विधियों का प्रश्न है, हमारे ६ बच्चे, प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी, एकीकृत परीक्षा में उत्तीर्ण हुये एवं छात्र-वृत्ति प्राप्त की। इसी प्रकार एक विद्यार्थी राष्ट्रीय छात्र-वृत्ति प्राप्त कर रहा है तथा एक उसमें बैठ चुका है जिसका परिणाम अभी आना शेष है। साथ ही विश्वास है कि इस बार अपने प्रथम बार सम्मिलित हो रहे दशम के छात्रों के द्वारा हम पूर्णरूपेण गौरवान्वित होंगे। इसी प्रकार रामकृष्ण मिशन स्कूल में आयोजित निबंध-लेखन-प्रतियोगिता में हिंदी निबंध लेखन में दशम कक्षा के छात्र शशि शर्मा ने प्रथम स्थान तथा इसी कक्षा के दूसरे होनहार छात्र अनित कुमार ने अंग्रेजी निबंध लेखन में द्वितीय स्थान प्राप्त कर विद्यालय के गौरव को बढ़ाया है। ऐसी ही एक दूसरी ब्रह्मावर्त सनातन धर्म मण्डल की श्री गीता-रामायण की मानस प्रवेश परीक्षा में दशम कक्षा के ही राजेश खुराना ने सर्वप्रथम स्थान तथा अनित कुमार ने इसमें भी द्वितीय स्थान प्राप्त किया है।

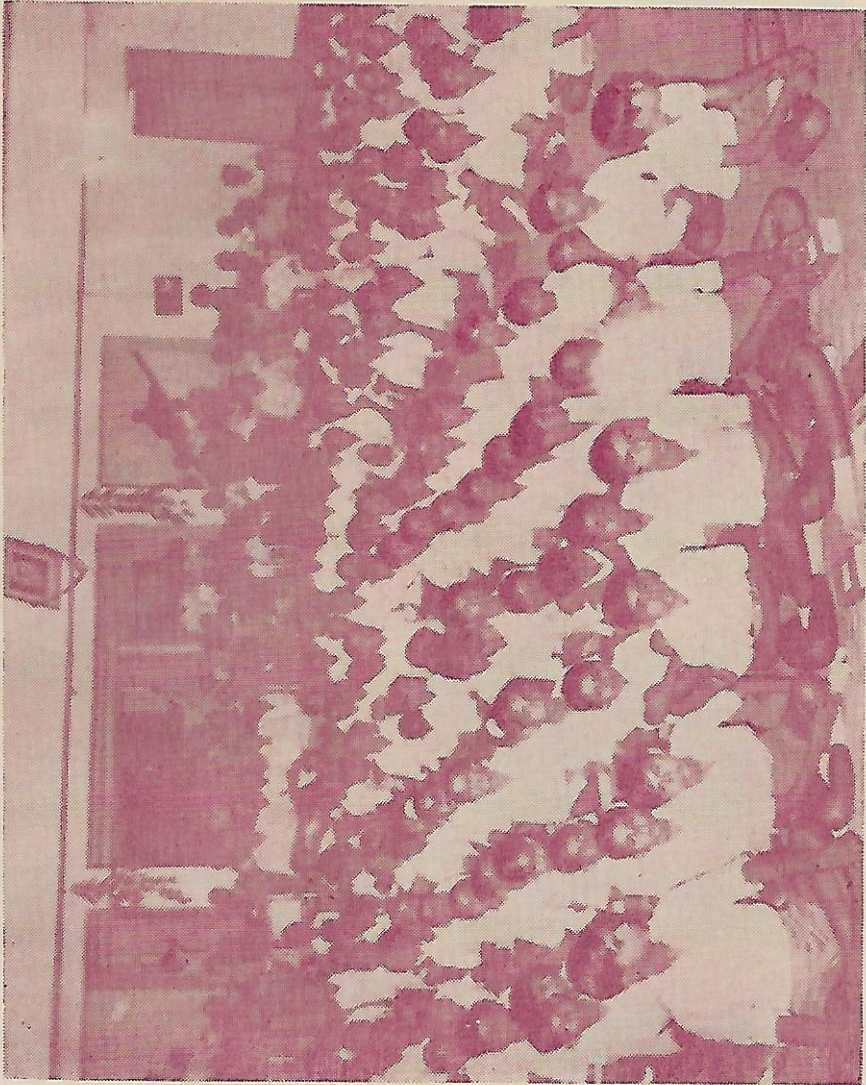
हमारे इन होनहार छात्रों का विकास इसी क्रम और व्यवस्थाओं के अंतर्गत होता चले—इस हेतु हमने इस वर्ष उत्तर-प्रदेश शिक्षा-परिषद् से यह माँग की है कि वह हमको आगामी सत्र में इण्टर कक्षा खोलने की अनुमति प्रदान कर दे। विश्वास है कि हम आगामी सत्र में अपने षष्ठ कक्षा में रहे छात्रों को इण्टर में भी पढ़ने की सुविधायें उपलब्ध करा सकेंगे।

विद्यालय-भवन से अलग स्वतन्त्र छात्रावास की योजना तैयार हो रही है। आशा है, आगामी वर्ष हम इसको भी पूरा कर लेंगे।

इस प्रकार हम अपने उद्देश्य की ओर सतत, प्रयत्नशील रहकर पहुँच रहे हैं। केवल आपके स्नेह-पूर्ण सहयोग की अपेक्षा है।

—प्राचार्य

वार्षिक समारोह की कुछ झलकियाँ



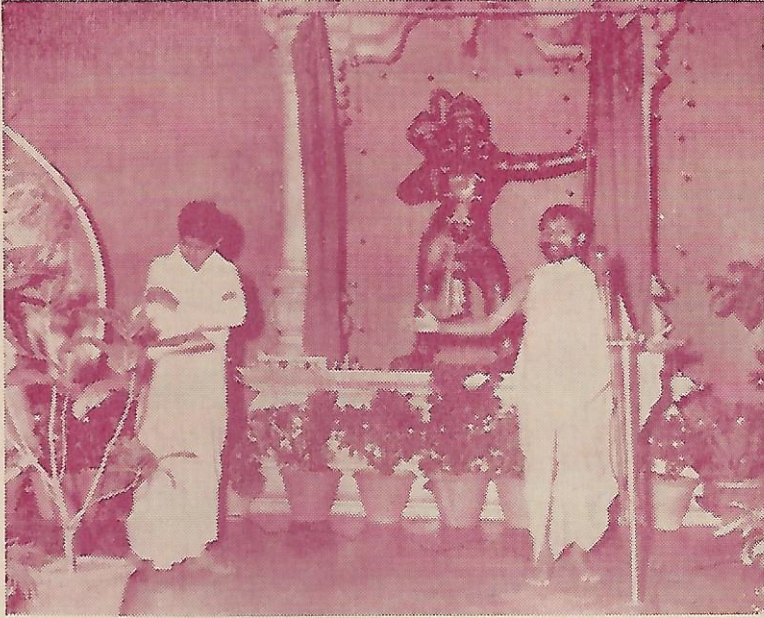
विद्यालय के पारितोषिक-वितरण-समारोह पर उपस्थित छात्र एवं आमंत्रित महानुभाव गण ।



मुख्य अतिथि से पुरस्कार प्राप्त करते हुये सत्यम कक्षा का एक होनहार छात्र नवनीत अग्रवाल ।



द्वयते वारित्तोषिक-वितरण-समारोह पर उपस्थित (बायें से दायें) श्री चन्द्रपाल सिंह (प्राचार्य), श्रीमान् डॉ० हरिसाङ्कर जी शर्मा भू० पू० उप शिक्षा निदेशक (मुख्य अतिथि) तथा श्रीमान् बैरिस्टर नरेन्द्रजीत सिंह (प्रबन्ध-समिति के अध्यक्ष) ।



उसी अवसर पर अभिनीत एक 'रूपक' 'नरेन्द्र से विवेकानन्द तक', में नवम कक्षा का छात्र विनोदकुमार (उलझन में नरेन्द्र) तथा समझाने की मुद्रा में उसी कक्षा का दूसरा छात्र भूपेन्द्र मिश्र (भगवान परमहंस)



उसी रूपक में नव-दीक्षित सन्यासी विवेकानन्द, आश्वस्त भगवान परमहंस तथा पीछे खड़ा विवेकानन्द का गुरुभाई। गुरुभाई की भूमिका निभाई उसी कक्षा के सुनील गुप्त ने।

संस्कृत-विभागः

संपादकः—

राजकुमार दीक्षित शास्त्री

अनुक्रमणिका

क्रमाङ्कः	विषयः	लेखकाः	पृष्ठाङ्काः
१.	वन्दना	संकलिता	२
२.	संस्कृतस्योपादेयता	आचार्य राजकुमार दीक्षितः	३
३.	अस्माकं प्रियं राष्ट्रं भारतम्	शशि शर्मा	दशम ५
४.	चिरस्मरणीयः पं० दीनदयालोपाध्याय	विनय कुमारः	दशम ७
५.	परमाणु शक्तिः	ओम प्रकाशः	नवम (क) ८
६.	किं-किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ?	अजय तिवारी	दशम ९
७.	सूक्ति संग्रहः	राजेश गर्गः	दशम १०



॥ श्रीः ॥

संवत् २०३१-३२

॥ वन्दना ॥

ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्तिनोवृहस्पतिर्दधातु ॥

(१)

स्वामिन् विधेहि करुणां मयि बुद्धिहीने
ज्ञानं लभेय विमल नहि जाड्य दोषान् ।
सद्यः प्रसीद भगवञ् शरणं गतोऽहम्
वन्दे गणेशमजमीशमनन्तरूपम् ॥

(२)

श्री सीता रघुनायकश्च गिरिजा शम्भुर्गणेशस्तथा ।
नन्दी षण्मुख लक्ष्मणौ च भरतः कञ्जोद्भवः शत्रुहः ॥
सर्वे ते मुनयः सुराश्च दितिजास्तीर्थानि नद्यो नदा ।
दिक्पालाः शशिभास्करौ च हनुमान् कुर्वन्तुवो मंगलम् ॥

—संकलित

(२)

संस्कृतस्योपादेयता

संस्कृतं न केवलं भारतस्य अपितु विश्वस्य प्राचीनतमा भाषा । इयमेव मानव - जीवन स्योद्देश प्राप्तये समर्था भवति । पठनीयमस्माभिरस्याः महन्महत्त्वमस्मिन् लेखे ।

—संपादकः

सास्त्रतम् संस्कृतस्य विषये प्रशासनस्योदासीनता समाजस्योपेक्षा क्रमश एघमानैव प्रतीयते । अस्मिन् विषये प्रशासनस्य समाजस्य च प्रधान्येन एष तर्कः यदधुना संस्कृतस्य काऽवश्यकता ? यतोऽद्य विज्ञान-युगं वर्तते । एतस्मिन् वैज्ञानिक-युगे इयं संस्कृत भाषा किमपि नोपकरोति ? संस्कृत विचार पद्धतिस्तु अस्मान् प्राचीनासु शृङ्खलासु निबध्नाति । अतएव एषा अद्य प्रगति-पथं नेतुं नितरामयोग्येति । परंमम भते तत्कथनं न समीचीनम् विद्यते । यतोहि—

“भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतम् संस्कृतिस्तथा”

अधुना सर्वेऽपि सामाजिकाः बहिरुज्ज्वलाः किन्त्वन्तर्मलिना अवलोकयन्ते सर्वेऽपि वाचि अमृतमयाः हृदये विषपूर्णाः प्रतिभान्ति । अत एषां सामाजिकानां परिशोधनम् सद्दिचारान् विना केनापि प्रकारेण कर्तुं न शक्यते । एतेषां समुन्नतिः सद्दिचारणामेषां माध्यमेनैव भवितुमर्हति । सद्दिचारणामुद्भवस्तु आध्यात्मिक ग्रन्थानामवलोकनेनैव भवितुं शक्नोति । तदनन्तरमेव सर्व-सुखानि मिलितुं शक्यन्ते । केचन् तु भौतिकसुखसमृद्धौ एव सुखमनुभवन्ति किन्तु सा तु सर्वथा क्लेशाय एव दृश्यते । यथा न कश्चन भौतिक समृद्धिशालि पुरुष विद्यते येन वृद्धाव स्थायामाध्यात्मिक ग्रन्थानाम् गीता, भागवतम्, उपनिषदा दोर्नां साश्रयो न गृहीतः । अस्यार्थो न भवति यत् भौतिक वादस्य किमपि साहाय्यमेव न विद्यते अपित्वस्त्येव तत् । अमित्वस्य

भौतिकवादस्य सर्वथा सर्वोपरि प्राधान्यं नास्ति इति मे विचारः ।

यद्यप्यधुना विज्ञानस्य प्राधान्यं परञ्चास्य विज्ञानस्योपरि प्रज्ञा प्रभाऽपि सुशोभते । एतस्याः प्रज्ञायाः अन्वेषणमपि कर्तव्यम् । प्रज्ञान्वेषेण विना तु विज्ञानं नाशाय न तु विकासाय इत्यहं मन्ये । भौतिक सुख समृद्धिस्तु शरीरं पोषणाय एव स्वप्रभावमर्पयति । नत्वान्तरिकसंतोषाय ततः परं जीवनस्य सौख्यं प्रदातु तस्याः पार्श्वे न किमपि देयं विद्यते । यतो हि जीवनस्य मुख्यं भोजनं तु आध्यात्मिकं तत्त्वमेवास्ति । अतोऽस्या अध्यात्म तत्त्वस्य सम्प्राप्तये संस्कृतभाषायाः अध्ययनाध्यापनयोरावश्यकता अद्याप्यनुभूयते सहृदयैः ।

उदाहरणार्थं भाषा अस्मान् “वसुधैवकुटुम्बकम्” शिक्षयति जीवनस्योद्देश्यं कथयन्ति । जीवन पद्धतिं सार्वभौम धर्मानपि कथयति । आयुरारोग्यं प्राप्तये मनुना निर्दिष्टान् मानव धर्मानपि प्रकाशयति “साहसे श्रीर्वसति” इत्युक्त्वा उद्योगं प्रति प्रेरयति । एष उद्योग एव भौतिक समृद्धिं प्राप्तये हेतुतां प्राप्नोति । “मागृधः कस्य स्विद्धनम्” “तेन त्यक्ते न मुञ्जीथाः” कथयित्वाऽस्माकं लोभ भावनां निवारयति । त्याग भावनां च विकासयति ; “ज्ञतहस्तैः समाहर” “सहसृहस्तैः सङ्कुर” इति दान शीलतायाः भावनां जागरयति । “ईशावास्य सिद्धं सर्वं यकिञ्जिगत्यांजगद्” इत्यनेन अहं भावनां दूरी करोति । किं बहुना ?

एषा कोकिलैव कं न सुखयति ? अ पितु इयं अस्माकं विचार पद्धति, आचार पद्धति, नैतिक जीवन, चिकित्सा, शास्त्रम्, पारिवारिक जीवनम्, सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय जीवनं वा सर्वतो भावेनोपकरोति ।

अधुना परिवार नियोजनस्य प्रचारे बहु धनस्य व्ययः क्रियते तथापि साफल्यं न प्राप्यते । परं एतस्याः अध्ययनेन अल्पव्ययेनैव साफल्यं प्राप्तुं शक्यते । यतो हि अस्यां भाषायां लिखितेषु स्मृति धर्मशास्त्र प्रभृतेषु शास्त्रेषु निर्दिष्टाः नियमाः अस्मभ्यम् पन्थान मेव प्रदर्शयन्ति । अधुना नेतारोऽपि कथयन्ति यदेक स्मिन् दिवसे अन्नं न ग्राह्यम् सर्वैः । परमत्र तु व्रतोपचारोपदेश एव तत्कार्यं अनायासेनैव साधयति । अस्माकं व्रत विधौ तु स्वेच्छा वर्तते । अत्र दमनात्मक प्रवृत्तिर्दृष्टि गोचरा न भवति ।

अधुना भावनात्मकैक्यप्रसारायापि बहवः प्रयासाः प्रचलिताः परं कुत्राऽपि कोऽपि लाभो न दृश्यते । यद्यस्याः भाषायाः उन्नति स्सम्यक् कृताऽस्यात् तर्हिसुखेनैव एषा भावने समाजे उद्भाविता स्यात् । यतोऽस्यां तु प्रेम्णः महत्त्व मतिशयेन गीतम् । उदाहरणाय कीठयोनी उत्पन्नो दारुभेदे निपुणोऽपि भृङ्गत्नेह प्रमावेण कमलतन्तु व्यवच्छेदने परतन्त्रः तदा विवेक शालिनां जनानां का कथा ? यथा—

“दारुभेद निपुणोऽपि बडङ्गिर्नान्प्रक्रियो भवति पङ्कज-कोषे” ? एवा संस्कृत माषैव भारतम् ऐक्य सूत्रे वद्धुं शक्नोति । अतः भारतोन्नति कामुकैः नेतृभिः गजनिमील-केव न भाव्यम् । अन्यथा परतन्त्रे भारतेयन्नाभूत् तदपि सम्भविष्यति । राजकीये निर्णये त्रिभाषा फार्मूलाख्येऽपि संघोधनस्य महत्यावश्यकतानु भूयते । यतस्तत्र संस्कृतस्य न किमपि स्थानं विद्यते । भारत वर्षे कुत्राऽपि गम्येत ? सर्वत्र एषैव मानव जीवनं जन्मतः प्रभृति लय पर्यन्तमुप-करोति । अधिकारिभिश्च नूतं विज्ञेयं यदियं कदापि कुत्रापि न विनश्यति । यतो हि “सत्यमेव जयते नाऽनृतम्” यदि शासनाधिकारिभिः अस्यास्स्थानं निर्धारितं क्रियते त्रिभाषासु तर्हि तेषां नामानि शासन कालस्येतिहासे स्वर्णाक्ष-रेषु लेखिष्यन्ते । अपि च तेषां निष्ठाऽपि स्फुटी भविष्यति । एषां प्रति ।

साम्प्रतं शासनाधिकारिणः यदा भाषा विषये चिन्तयन्ति तदा सुरभारतीसेवापराणां विदुषां स्थानमपि न मिलति इदंमहते आश्चर्याय भवति । यतोहि ये शिक्षकाः विद्या भिलाषुकाः अध्यापकाः प्राध्यापकाश्च छात्रेषु निकट-तमाः भवन्ति । वस्तुतः त एव जानन्ति यत् शिक्षानीतौ कुत्र किञ्च परिवर्तनं विद्यार्थिनां देशस्य वा हिताय भविष्यति ।

हन्त । भारतीय मन्दिराऽपि राजनीति मन्दिराणि विधीयन्ते तत्र विद्यार्थिनः विचारधाराऽपि परिवर्तिता विद्यते । एवं विधे कठिन तमे अवसरे शासनाधिकारिभिः यदि समीचीना व्यवस्था न क्रियते तर्हि विद्यार्थिनाम् विद्या मन्दिराणाम् देशस्य समाजस्य वा महती शोचनीया दशा भविष्यति । छात्राः सम्यक् तथा न पठिष्यन्ति । तेषामु-द्देश्यं शिक्षा ग्रहणं न भूत्वा राजनीति शिक्षणमेव भविष्यति । शिक्षां विनाते कथं राष्ट्रस्य शासन चालने समर्थाः उपयुक्ताः वा भविष्यन्ति ? यदाहि छात्रा एव देशस्य कर्ण-धाराः शिक्षा संस्था एव निर्मात्र्यः भवन्ति ।

अन्यासां भाषाणां भाषात्वे मम द्वेषो नास्ति । भाषास्तु सर्वा उपयोगिन्यो वर्तन्ते । यथा स्वमातृ भूमौ मातृ भाषा आध्यात्मिक ज्ञानाय संस्कृतम् विदेश भ्रमणे आङ्ग्लभाषा तु महदुपयोगिनी भवति । यतोहीयं अन्तर्राष्ट्रीय भाषा विद्यते । संसारस्य प्रभृताः देशाः अनया भाषया एव व्यवहरन्ति । अहं तु तदा दुःख मनु भवामि । यदा जनाः कथयन्ति यत् संस्कृतं किमपि नोपकरोति । ये एतद् कथ-यन्ति तेभ्योमम निवेदन मस्ति । यत् हृदयसंस्कर्त्री आयु-रारोग्य प्रदात्री संस्कृतं विना का भाषाऽस्ति ?

समाप्तावहं अस्याः सुरभारत्याः स्वतंत्रेऽस्मिन् भारत-वर्षे उन्नति कामयमानः विश्वे शं याचे । यत् सर्वत्र देव गिरायाः प्रसारः प्रचारश्च भारतीय गौरवस्य रक्षणाय भवतात् ।

अस्याः महत्त्वं वर्णयन् कथितम् केनापि कविना—

“संस्कृतं हि दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः” ॥

अन्यच्च—

भाषासु मुख्या दिव्या सरला गीर्वाण भारती ।

तस्माद्धि काव्यं मधुरं तस्मादपि सुभाषितम् ॥

॥ इति शम् ॥

—राजकुमार दीक्षित

अस्माकं प्रियं राष्ट्रं भारतम्

-शशिशर्मा (दशम)

सृष्टेः प्रारम्भादघावधि भारतवर्षस्य महन्महत्त्वमवलोक्यते । विश्वस्य सर्वे देशवासिनः
भारतादेव चरित्रं शिक्षामापनुवन् यथा मनुस्मृत्याम् कथितम्
एतद्देशं प्रसूतस्य सकाशादग्रजत्मनः, स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः
अस्माभिः पठनीयम् तन्महत्त्वं मस्मिन् लेखे ।

वस्तुतो वयं अतिसौभाग्यशालिनः स्मः यतो हि वयं
पृथिव्याः स्वर्गे भारतवर्षे उत्पन्नाःस्मः । अस्मिन्नेव धरणी-
तले राम-कृष्ण-गौतम-सदृशाः अतिमानवाः भीम-अर्जुन-
प्रताप-शिवराज-गोरा-बादल-सदृशाः वीराः वेदव्यास-
वाल्मीकि-सूर-तुलसी-प्रसाद सदृशाः कवयः नरसी-तुकाराम-
ज्ञानेश्वर-रामकृष्ण परमहंस-रामतीर्थ - विवेकानंद - गांधी-
विनोबा- सदृशाः महात्मनः युधिष्ठिर- माध-कर्ण-रन्तिदेव-
बालि-समाः दानवीराः सुभाष-भगतसिंह-आजाद-सरदार
पटेलः—इव नर-शाहूलाः प्रादुरभवन् ये राष्ट्रस्य यश-
सुरभिं सर्वव्यापिनीं अकुर्वन् । अस्याम् पुण्यभूम्यां जन्म-
धारणाय देवाः अपि अत्युत्सुकाः सन्ति । भारतराष्ट्रम्
साक्षात् स्वर्ग-सदृशं महत्तमम् अस्ति । अतः देवाः,
किन्नराः यक्षाः अपि अस्य गुणानां स्तवनं कुर्वन्ति । यथा—

“गायन्ति देवाः किलगीतकानि,
घन्यास्तु ये भारतभूमि भागे ।
स्वर्गावर्गास्पद हेतु - भूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥”

भारतवर्षः प्रकृतेः क्रीडास्थलं वर्तते । स्थाने-स्थाने
प्रकृतेः विविधानि मधुराणि दृश्यानि दरीदृश्यन्ते । अस्य
प्राकृतिक-वैभवं वर्णनातीतं अस्ति । अनेके सिद्धकवयः

अस्य महिमायाः वर्णनं अकुर्वन् । महाकविः जयशंकर
प्रसादः अपि भारतवस्य प्राकृतिक-सुषमायाः चरमोत्कर्षं
ज्ञात्वा अलिखत् यत्—

“अरुण यह मधुमय देश हमारा ।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।”

× × ×

“हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार ।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया, और पहनाया हीरक हार ॥”

प्रकृतिः भारतवर्षे आनंददायिनं-लासन्तृत्यं करोति ।
एतत् प्रतीयते यत् प्रकृतिः अत्र आगत्य स्व-विविधानि
रूपाणि धारयति । अत्र प्रतिक्षणं प्रकृतिः स्व-रूप परिवर्तनं
करोति ।

सभ्यतायाः पुण्यः प्रकाशः सर्वप्रथमं अत्रैव प्रस्फुटितोऽ-
भवत् । अस्माकं राष्ट्रम् प्राचीने काले जगद्गुरुरासीत् ।
सांप्रतम् अतीतस्य गौरवं समाप्तप्रायमस्ति । समृद्धं सम्पन्नं
च इदम् राष्ट्रम् अधुना भिक्षुक-समं दीनं अस्ति ।

यद्यपि भारतवर्षे अनेके प्रदेशाः, अनेकाः रीतयः,
अनेक-वेशाः, अनेकाः जातयः, अनेकाः भाषाः च सन्ति

तथापि भारतवर्षे ऐक्यशक्तिः वर्तमाना अस्ति ।

भारतवर्षस्य सांस्कृतिक-वैभवं अपि अभूतपूर्वं मस्ति । साहित्ये, संगीते, कलायाम् च अस्माकं राष्ट्रम् समृद्धं संपन्नं चास्ति । महापुरुषाणां, दार्शनिकानां, विचारकारणां च एवैव कर्मभूमिः, चिंतनभूमिः च अस्ति । कवणाद-वसु-भाभा-साराभाई-सेठना-रामण्णा इत्यादयः भारतमातुः शुभ्र-किरीटस्य मणयः सन्ति । अधुना भारतवर्षः संक्रमणकालेऽपि प्रगतिं करोति । आंतरिकाः बाह्याः च विघ्नाः विराटरूपेण उपस्थिताः वर्तन्ते । अस्माकं सहनिवासिनः अपि शत्रुवत् व्यवहरन्ति । यद्यपि युद्ध-समये अस्माभिः उल्लेखनीया उन्नतिः विहिता; तथापि खाद्य क्षेत्रे न काप्युन्नतिः कृता । अतएव अस्माभिः प्राणपणेन न केवलम् भारतवर्षस्य सुरक्षा

कर्त्तव्या अपितु खाद्योत्पादन-क्षेत्रेऽपि संतोष जनक उन्नतिः विधेया । अस्माकं परमकर्त्तव्यम् वर्तते यत् वयम् स्व-जीवनं राष्ट्रहिताय समर्पयेम ।

भारतभूमेः महत्त्वम् वर्णयन् केनचित् कविनोक्तम्—

यशो यस्य शुभम् विदेशेषु गीतम् ।
प्रियं भारतम् सर्वदा पूजनीयम् ॥

अन्यच्च—

अहो भुवः सप्त समुद्र वत्या ।
द्वीपेषु वर्षेष्वधि पुण्यमेतत् ॥
गायन्ति यत्रत्य जनाः मुरारेः,
कर्माणि भद्राण्यव तारयन्ति ॥



जब तक मेरी जन्मभूमि का एक कृत्ता भी भूखा है तब तक उसे आपार देना मेरा धर्म है । इसके अतिरिक्त जो कुछ भी अधर्म है,—

स्वामी विवेकानन्द

चिरस्मरणीयः पं० दीनदयालोपाध्यायः

विनय कुमार (दशम)

असारे खलु संसारे तेषामेव जन्म सफलं ये न केवलम् स्वार्थाय अपितु परार्थाय देश
हिताय वा स्वजीवनमार्पयन् । एवं विधेषु पुरुषेष्वयं महाभागः पं० दीनदयालोपाध्याय
आसीत् । अस्माभिः तस्यचरित्रमनुकरणीयम्—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्हम् ॥

इयं भणितिः यथा ईश्वरस्य विषये चरितार्थो भवति
तथैव महापुरुषाणामपि । अस्माकम् देशे समये-समये अनेके
महापुरुषाः जन्मानि अलभन्त । तेषु पंडित दीनदयालो-
पाध्यायोऽप्येकोऽस्ति । अस्य जन्म तस्मिन् समये अभवत्
यदा सम्पूर्णं मानवाः धर्मं त्यक्त्वा अधर्मं आचरन्तिस्म ।
तस्मिन् विषम-समये राजस्थान प्रदेशे धनकिया नामक
ग्रामे श्री चुन्नीलाल शुक्ल महोदयस्य गृहे चैत्र मासस्य
कृष्ण पक्षे त्रयोदश्यां तिथौ तदनुसारं सितम्बर मासस्य
पञ्चविंशति तारिकायाम् १९१६ तमे वर्षे जन्म गृहीतवान् ।

जन्मना एव तत् समक्षं आगतासु विषम-परिस्थिति-
ष्वप्यय परिश्रमेण प्रत्येकं कार्यं सफलता-पूर्वकं अकरोत् ।
पंडित दीनदयालोपाध्यायः प्रारम्भे स्व जन्म स्थानैव
शिक्षामगृहीत् । तथा कर्णपुरे सनातन धर्म महाविद्यालयं
अधीत्य स्नातकोत्तर शिक्षां लब्धुं आगरा विश्वविद्यालयं
प्रविष्टवान् । मध्ये एव शिक्षां विहाय सः स्वभगिन्याः
चिकित्सायै गतवान् । कर्णपुरे एव अस्य परिचयः
बत्कालिके राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघस्य प्रान्त-प्रचारकेण

श्री भावराव महोदयेन अभवत् । ततः आगते सति अयम्
स्व-सम्पूर्ण-जीवनं राष्ट्रप्य सेवायाम् समर्पितवान् । अयम्
राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघस्य तहसील प्रचारकः, प्रान्त
प्रचारकः, भारतीय जनसंघस्य प्रान्त संगठन मन्त्री, अखिल
भारतीय अध्यक्षस्य च अनेकान् पदान् सुशोभितं कृतवान् ।

‘महात्मनां हि विलक्षण मृत्युर्भवति’ अनेन क्रमेण
एकादश्यां तिथौ फरवरी मासे १९६८ तमे वर्षे सः चिराय
अस्मान् त्यक्त्वा विमुखोऽभूत् । वस्तुतः पंडित दीनदयालो-
पाध्यायः सरलः नम्ररचासीत् । अयम् स्व-सम्पूर्ण-वस्तुनि
राष्ट्राय समर्पितवान् । वयम् तस्य जीवनस्य लक्ष्ये चलेम ।
तथास्य मूर्तिं हृदये, तस्य विचारान् मस्तिष्के धृत्वा, तस्य
संकल्पं ज्ञात्वावयं तस्य जीवनस्य लक्ष्यं साकारं कुर्याम ।
तस्य मृत्योपरान्ते जनसंघस्य अध्यक्ष महोदयेन श्री अटल-
बिहारी बाजपेई महोदयेन कथितम् यत् “सूर्यः अस्तंगतः,
अधुना अस्माभिः नक्षत्राणां प्रकाशे मार्गोऽन्वेषणीयो
भविष्यति । वन्दे राष्ट्रभक्तम् ।

—:०:—

परमाणोः नाभिके असीमाशक्तिर्निहिताऽस्ति । अस्या रन्मूलनमेव परमाणुशक्तिः कथ्यते । यदाहि ब्रह्माण्डे सर्वाणि ऊर्जास्रोतानि समाप्स्यन्तेतदा नाभिकाया ऊर्जा एव विकल्यो भविष्यति । अस्तित्यस्याः चर्चाऽस्मिन् लेखे ।

परमाणु-शक्तिः

—ओम प्रकाश (नवम 'क')

जामान्तर्गते भानौ सूक्ष्मं यद् दृश्यते रजः ।
तस्य षष्ठितमो भागः परमाणुः स उच्यते ॥

इत्यनेन परमाणोः सूक्ष्मता स्फुटा भवति । परमाणुः पदार्थस्य लघुतमः अंशः । तस्य सूक्ष्मता एवं अनुमातुं शक्यते यत् यदि मानवस्य आकारः परमाणुना तुल्यो भवेत् तदा समस्त लोकस्य मानवाः सूचीमुखे स्यात् शक्नुवन्ति । स चायं परमाणुः महाशक्ति सम्पन्नः ।

वयम् अग्नौ जले, पवने च शक्तिं नित्यं अनुभवाम् । एतेषामेव पदार्थानाम् शक्तिभिः अस्माकं दैनिकानि कार्याणि नित्यं साध्यन्ते । यन्त्राण्यपि एतेषामेव शक्त्या परिचाल्यन्ते, किन्तु एतेभ्योऽपि सहस्रगुणा शक्तिः परमाणौ विद्यते । अस्य परमाणोः ऊर्जायाः कल्पना एवं कर्तुं शक्यते यदि वयम् अर्धकिलोग्राम मात्रम् अङ्गारकम् ऊर्जायां परिवर्तितं कुर्याम तदा तस्य शक्त्या विश्वस्य विशालतम् जलयानं वायुयानं वा समग्रं भूमण्डलं सुगमतया परिक्रमितुं शक्नोति ।

सर्वप्रथमं पुरा एतस्य प्रतिपादनं भारतस्य ऋषि कणादः अकरोत् । महर्षि कणादः मरणपर्यन्तं 'पीलव' इति शब्दस्य उच्चारणं अकरोत् । यस्य अर्थः परमाणुः भवति । महर्षि कणादः परमाणुं एव स्वस्य सर्वस्वं अमन्यत् । आधुनिक युगे महावैज्ञानिकेन 'आई स्टीन'

महोदयेन एषः प्रतिपदितः । सः द्रव्य-ऊर्जयो परस्पर सम्बन्धानाम् अत्यन्त सूक्ष्म-विश्लेषणम् अकरोत् तथा एतद् सिद्धम् अकरोत् यत् पदार्थानाम् अत्यन्त सूक्ष्मा-संहतिः अपार-ऊर्जायाम् परिवर्तितुं शक्यते ।

परमाणोः केन्द्रं 'नाभिक' इति कथ्यते । यथा सूर्य परितः सर्वे ग्रहाः परिभ्रमन्ति तथैव इलेक्ट्रॉन नाभिकाः कणाः नाभिक परितः परिभ्रमन्ति । नाभिके घनावेशः भवति । इलेक्ट्रॉने ऋणावेशः भवति । नाभिके प्रोटान नामकाः कणाः भवन्ति । यस्मिन् अपि घनावेशो भवति । परमाणौ आवेश-शून्य कणाः अपि भवन्ति । ते न्यूट्रॉन इति कथ्यन्ते ।

परमाणु शक्तेः प्रयोगः यथा विनाशाय, तथैव निर्माणाय, मानव कल्याण च कर्तुं शक्यते । चिकित्सा विज्ञाने अपि 'कैंसर' इति भयानक रोगस्य उपचारे परमाणु-शक्तिः अत्यन्त उपयोगिनी सिद्धयति । आशा क्रियन्ते यत् जले, स्थले, वायुयाने, अन्तरिक्ष-यातायाते च परमाणु ऊर्जा उपयोगिनी सिद्धा भविष्यति । अस्माकं देशेऽपि वैज्ञानिकः अस्याः ऊर्जायाः प्रयोगं अकुर्वन् । यस्य सफल-भूमिगतपरीक्षणस्य श्रेयः डा० सेठना, डा० रामन्ना इति वैज्ञानिकैः लब्धः ।

॥ इतिराम् ॥

सर्वं द्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।

अहार्यत्वादनर्घ्यत्वा दक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥ मानव जीवनस्य लौकिक पारलौकिक यो
रुदेश्ययोः पारलौकिकमेव समीचीनम् । विद्यैव तत् प्राप्तुं शक्यते । अत एव पठनीयम
स्याभिरयंलेखः ।

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ?

—अजय तिवारी (दशम)

“नक्षत्रं भूषणम् चन्द्रो नारीणाम् भूषणम् पतिः ।
पृथ्वी भूषणम् राजा, विद्या सर्वस्य भूषणम् ॥”

व्यये कृते वर्धते एव नित्यम्,
विद्या धनम् सर्वं धनम् प्रधानम् ॥”

विद्यते सत् असत् ज्ञानम् अनया सा विद्या कथ्यते ।
विद्या विनयम ददाति । विनयात् पात्रता प्राप्यते । पात्र-
त्वात् धनम् प्राप्यते । ततः च सुखम् प्राप्यते । केनापि
कविनोक्तम्—

विद्या दिक्षु कीर्तिम् प्रसारयति । किंबहुना विद्या-
विहीनः मनुष्यः पशुवत् भवति । के नापि कविना
सत्यमुक्तम्—

“विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद् धनम् आप्नोक्ति पश्चाद्धर्मः ततः सुखम् ॥”

“विद्या नाम नरस्य रूप मधिकम् प्रच्छन्न गुप्तं धनम्,
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणाम् गुरुः ।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम्,
विद्या राजसु पूज्यते नहि धनम् विद्याविहीनः पशुः ॥”

अन्यम् धनम् व्यये कृते नश्यति, किन्तु विद्या धनम्
व्यये कृते नैव नश्यति, अपितु व्यये कृते वर्धते । अन्यम्
धनम् चौरः चोरयति, किन्तु विद्यानम् चौरः नैव
चोरयति अन्यम् धनम् राजा हरति, किन्तु विद्या धनम्
राजा न हरति । अन्यम् धनम् भ्राता विभजते, परन्तु
विद्या धनम् भ्राता नैव विभजते । अत एव विद्या धनम्
सर्व धनेषु श्रेष्ठम् मन्यते । विद्या-महत्त्व-विषये के नापि
कविना उक्तम्—

विद्या मानवेभ्यः धनम् दापयति । विद्या सुखम् च
ददाति । अत एव के नापि कविना कथितम्—

“मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते,
कान्तेव चाभिर मयत्यपनीय खेदम् ।
लक्ष्मीम् तनोति वितिनोति च दिक्षु कीर्तिम्,
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥”

न चौर हार्यम् न च राज हार्यम्,
न भ्रातभाज्यम् न च भारि कारि ।

इति शम्

सूक्ति-संग्रहः

—राजेश कुमार गर्ग (दशम)

पृथिव्यां जीणि रत्नानि जलमन्न सुभाषितम् ।
तस्माद्धि काव्यं मधुरं तस्मादपिसुभाषितम् ॥

- (१) अनभ्यासे विषं शास्त्रम् ।
बिना अभ्यास के शास्त्र भी विष है ।
- (२) आचारः परमो धर्मः ।
सदाचार ही श्रेष्ठ धर्म है ।
- (३) गतानुगति को लोको न लोको पारमार्थिकः ।
यह संसार अंधानुकरण करने वाला है, परोपकारी नहीं ।
- (४) उत्पद्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः ।
गरीबों की इच्छायें उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती हैं ।
- (५) अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ।
बिना घास की जमीन पर गिरी हुई अग्नि स्वयं ही शान्ति हो जाती है ।
- (६) उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
परिश्रम करने से ही कार्य की सिद्धि होती है केवल इच्छा मात्र से नहीं ।
- (७) आमुखापाति कल्याणं कार्यसिद्धिं हि शंसति ।
होनहार व्यक्ति के लक्षण पहले से ही दिखायी देने लगते हैं ।
- (८) आहारे व्यवहारे च व्यक्त लज्जः सुखी भवेत् ।
आहार और व्यवहार में लज्जा छोड़ देने वाला ही सुखी होता है ।
- (९) उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।
उदार चरित्र वाले लोगों के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी परिवार के समान है ।
- (१०) उष्णो दहति चाऽङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ॥
अङ्गार जब गर्म होता है तो जला देता है तथा ठंडा होने पर काला कर देता है ।
- (११) तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते ।
तेजस्विता अवस्था पर आधारित नहीं होती है ।
- (१२) शीलं हि सर्वस्य भूषणम् ।
विनम्रता ही मनुष्य का आभूषण है ।
- (१३) सर्वः कान्तमात्मीपं पश्यति ।
स्वामी सब को अपने समान देखता है ।
- (१४) हताविधि परिपाकः केन बालङ्घनीयः ?
दुःख की बात है कि भाग्य का लिखा हुआ कोई मिटा नहीं सकता ।
- (१५) मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता ।
कम बोलना ही श्रेष्ठ बात है, अधिक बोलना नहीं ।

CONTENTS

ENGLISH SECTION

NIRAJAN

Vol. II

1974-75

Student Editor

Anit Kumar

CONTENTS

Serial No.	What	Who	Where
1.	To India	— <i>Sarojini Naidu</i>	1
2.	Pt. Deen Dayal Upadhyaya —Some Reminiscences	} <i>Shri C. P. Singh</i>	2—4
3.	The Mission of Life	— <i>Shri Rama Kant Awasthi</i>	5—8
4.	Swami Ram Tirtha	— <i>Vinay Kumar Class X</i>	9—10
5.	My Alma Mater	— <i>Rajesh Shrivastawa Class X</i>	11—12
6.	Subhash Chandra Bose	— <i>Rajesh Garg Class X</i>	13—14
7.	Our Pilgrimage to the Land of Heroes	} <i>Anit Kumar Class X</i>	15—19
8.	In the Foot-steps of the Great Buddha	} <i>Anit Kumar Class X</i>	20—25
9.	Three Poems	— <i>Anupam Sharma Class X</i>	26
10.	The problem of Unemployment	— <i>Shri Ram Shankar Tripathi</i>	27—28

To India

O ! young through all thy immemorial years
Rise, Mother, rise, regenerate from thy gloom,
And, like a bird high-mated with the spheres,
Beget new glories from thine ageless womb,

The nations that in fettered darkness weep,
Crave thee to lead them where great mornings break,
Mother, O ! Mother, wherefore dost thou sleep ?
Arise and answer for thy children's sake.

Thy future calls thee with a monifold sound
To crescent honours, splendours, victories vast;
Waken, O ! slumbering Mother, and be crowned,
Who once wert empress of the sovereign past.

—Sarojini Naidu.

PANDIT DIN DAYAL UPADHYAYA

—SOME REMINISCENCES

As our Principal was for sometime in intimate contact with the late Pt. Din Dayal Upadhyaya, it is but in the fitness of things that we get here from his pen some very homely and loving touches of the great soul

—Editor.

Some people are born great, some acquire greatness and on some greatness is thrust. Pandit Din Dayal Upadhyaya belonged to the second category of people. In his family circle known as Deenu and among his Sangh friends and acquaintances called Din Dayalji, he came to be known as Pandit Deen Dayal Upadhyaya or Panditji only when he became General Secretary and later President of the Bharatiya Jan Sangh.

It was some time in 1943. A shakha or branch of the Rashtriya Swyamsewak Sangh had been started at Hardoi one year earlier. I happened to be its first karyavah or secretary. Hardoi was one of the districts included in Lakhimpur vibhag or administrative circle from the Sangh point of view. The late Pt. Shyam Narayan Mishra was the Vibhag Sangh Chalak. One fine morning a medium-sized young man, still in his twenties, of wheatish complexion and spare build, greeted me with a broad smile. He had brought a letter of introduction from the Vibhag Sangh Chalak, which informed me that he was our Vibhag Pracharak, Pandit Din Dayal Upadhyaya.

Now as Vibhag Pracharak Din Dayalji began to visit Hardoi quite frequently. Sometimes he would stay with us for days together. He became quite intimate with all the members of my family. As he hailed from the district of Mathura, to which my wife also belonged and as Mathura is contiguous to my home district Agra, I naturally felt drawn towards him. Moreover, both of us were Braj-bhashi, speaking the same dialect, though it was very seldom that we exchanged words in our home tongue.

Din Dayalji was about six years younger to me. He called me Master Sahib as I was then a lecturer at the local intermediate college and paid due regard to me, I being his senior in age. And yet he commanded my respect as he did of other elderly swyamsewaks by dint of his conduct, character and intellect. His had been a first class academic career. He could very easily compete for the most coveted Government service, the I. C. S. He, however, in keeping with his innate nature had chosen to be a teacher and had obtained a double first class in L. T. at the Central Pedagogical Institute Allahabad

He could very easily rise to be a Deputy Director of Education, if not the Director of Education. But this career too he had spurned in order to become a simple Pracharak of the R.S.S. Being a Pracharak means adopting a life of celibacy, poverty and utter self-effacement. For Din Dayalji who had lost both his parents in his infancy and had been brought up in almost penury by his maternal uncle who expected so much from him, to deny all worldly prospects was really a very great sacrifice on his part. It was this spirit of self-sacrifice and dedication, combined with utter simplicity, sincerity and sharpness of intellect which impressed us all. Soft-spoken and sweet-tempered, he was able to disarm all those who differed from him with his sweet reasonableness and clear thinking. Shri Radha Krishna, the ex-Vice chancellor of Kanpur University, who was then a congress M. L. A. at Hardoi, was one of the great admirers of young Din Dayal.

As a swayamsewak he had passed the third-year course from Nagpur, but though well-versed in the philosophy of the Sangh, he was rather indifferent to his personal appearance and efficiency in physical culture course. He was essentially a thinker and had clear concepts about the object of the Sangh and its working. But possessing, as he did, a frail constitution, he could never make his mark in games, or physical drill. Though he was not smart in his dress and bearing, he did not lack in mental smartness. Though very simple in his manners and behaviour, he could not be easily bamboozled. He could easily get at the motives of the people he came into contact with. As a speaker, he was not a rabble-rouser, but a sedate persuasive dealer in words appealing to the heart of his audience through its head.

Whatever time Din Dayalji could snatch from his otherwise busy programme of organisational work, which consisted of visiting the various shakhas and addressing rallies of swayamsewaks and meetings of Sangh workers, he devoted to the study of books, which he borrowed from different sources. Once he took from my personal library such books of divergent subjects as Upanishad-prakash, Sumitranandan's 'Pallav' and Lajpat Rai's 'Young India'. That shows the variety of his interests. By the way, I may mention here that he was very particular in returning the books borrowed by him to their owners in time—a rare quality in book-lovers. Usually he got time for reading while travelling by train or at night, when the others had gone to sleep.

It was as Vibhag Pracharak that Din-Dayalji wrote his first book, Chandra Gupta Maurya. Once an idea got hold of his mind, he was able not long after, to give it a shape. He felt the need of good biographies for young swayamsewaks and he started writing them. Soon he completed his second biography, 'Shankaracharya'. He advised me too to write a short biography of Swami Vivekanand in Hindi. With this end in view he brought for me a biography of the Swami in English. But lethargic as I was, I wrote a few pages, but could not complete the assignment.

Din Dayalji was a liberal to the backbone. Intolerance in word, thought or deed was quite foreign to his nature. Though firmly rooted in Sangh ideology, he kept the windows of his mind open to the four winds. Before being drawn into the Sangh I had been a Gandhite and habitual wearer of khadi, which I kept using till 1948. Once when addressing the swayamsewaks, I exhorted

them to make it a point to use only swadeshi goods as far as possible. Din Dayalji very much appreciated my view-point. In those days Acharya Vinoba Bhave's literature had begun to appear and I found some of his works included in the few books which Din Dayalji always carried in a bag with him. He always welcomed new ideas which were in consonance with his fundamental beliefs.

It was about 1946-47 that Din Dayalji was deputed to Lucknow where he was put in charge of the publication work of the R. S. S. For some time he was by turn on the editorial board of the monthly 'Rashtra Dharma', the weekly 'Pancha(yaj)ya' and the short-lived daily 'Swadesh'. In those days he had to work eighteen hours a week, doing all kinds of work, from that of a compositor to that of writing the leading article, never caring at the same time that his name should appear in the print. It was a noble example of self-abnegation.

It will not be out of place if I give here one of my recollections of that noble soul, which sheds a flood of light on his spirit of sacrifice. Once I was surprised to find that though I was earning some thing, a little over one hundred rupees per month and Din Dayalji did not get a single paisa by way of salary, he was able to offer Rs. 51/- as guru dakshina, whereas I could offer only Rs. 25/-. When asked by me how he could manage to do so, he told me that this sum consisted of the small sums he had been receiving from his maternal uncles and aunts whenever he had visited them.

Soon after independence of the country I became Principal and was to some extent detached from the active working of the Sangh and Din Dayalji's services too were being utilised exclusively for some important ancillary activities of the Sangh like publication, journalism and later on politics. Consequently the occasions of our meeting became few and far between. After the coming into being of the Baratiya Jan Sangh in 1950 he became its General Secretary and as such had to undertake long all-India tours. But whenever he met me by chance he was the same simple, unassuming Din Dayalji which he was as Vibhag Pracharak, accosting me as "Master Sahib" or "Principal Sahib" with his usual broad smile. He never failed to enquire about my children on these occasions. Soon after his triumphal return from Trivendrum in the South where he had gone as President-elect of the Bhartiya Jan Sangh and only a few days before his tragic departure from the worldly stage I chanced to meet him one night at Varanasi Cantonment station. He was waiting for a broad gauge down train and I for a meter gauge one for Ballia. Without feeling the weight of the president-ship of an all-India party like the Jan Sangh and discarding all formalities he greeted me most cordially and in his inimitable homely way inquired about me and my children—Susmita Rajju and Munna and condoling for the passing away of their mother who had died some time back. Little did I know that it was to be our last meeting. When some time later the tragic news came, it was a terrible shock like that of the passing away of a near and dear one.



THE MISSION OF LIFE

[Life without a mission is not worth living according to the author. It is the mission which gives value to one's life. A missionless life is an animal's life.]

—The Editor.

Rama Kant Awasthi M. A., B. Ed.

“Some are born great, some achieve greatness, and some have greatness thrust upon them.”

William Shakespeare.

Nowadays our country is passing through critical times. There are many causes for this. But to me it appears that deterioration in our moral standards, is the main cause. This adversely affects all other spheres—economic, social and political. The most damaging factor is the deterioration in the character of our people.

Life is real, life is earnest,
And the grave is not its goal.
Dust thou art to dust returnest,
Was not spoken of the soul..

In the above stanza the mission of life is positive. We are born and we die, but never think of the aim of life. Neither we bother our heads nor we have care for it. But simply—

Eat, drink and be merry,
For we may die tomorrow.

This mentality of people is not conducive to higher life. In the following lines the poet

tells us that a nation is great not because of its wealth but because of the high moral courage and ideals of its people.

“Not gold, but only men can make
A people great and strong—
Men who, for truth and honour's sake,
Stand fast and suffer long”.

—Ralph Waldo Emerson

The followers of the Semitic religions like Islam and Christianity believe that we are born only once and so we should enjoy life as much as we can. But on the other hand, the Hindus say that just as we discard our old clothes from our body and put on new ones, in the same way the soul takes another life after death.

वासंसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

If we have to take birth, we should do

good deeds, so that the future generations may remember us, otherwise they will criticise us saying—

Honour to those whose words or deeds
Thus help us in our daily needs,
And by their overflow
Raise us from what is low.

We should fix our ideals according to which we may lay down our line of action. The upanishadic rishi says—

“असतो मा सद् गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृत गमय ।”

We can make use of this prayer, if we practise the ideal from our childhood. To be a greatman, truth is the most indispensable virtue for every one. In the Bible it has been stated, “Behold, the kingdom of God is within you. You are the temple of Him”.

There are four ways for leading an ideal life—good nature, good tendencies, good conduct and good character. But according to Hindu mythology—

वृत्तिः क्षमा दमोऽस्त्येयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
वीर्यं सत्यमक्रोधो दशकं धर्मं लक्षणम् ॥

The men who have been great such as Newton, Abraham Lincoln, Socrates, Goswami Tulsidas, M.K. Gandhi, Shivaji, Rana Pratap and M. S. Golwalker etc. were men of versatile genius and powerful in soul force. Although some of them in their earlier life were not conscious of their mission, yet after events brought about a sudden change in them and they became the leaders of men in their respective fields.

Always remain true to your words. The

great philosopher of the world Socrates says, “Know thyself, From knowledge comes virtue and goodness, from ignorance comes all that is evil”. He argued that no man willingly chooses what is evil, he does evil out of ignorance, therefore, the chief aim of life should be to acquire knowledge. He said at the hour of his departure, “We go our ways I to die, you to live—which is better only God knows.”

Thus we mark that in their latter days they eliminated their faults gradually and attained spiritual greatness. They did their best to serve their fellowmen. But these greatmen never criticised them in any way.

Lives of great men all remind us,
We can make our life sublime.
And departing leave behind us,
Foot-prints on the sands of time.

Besides, self-reliance is also an essential means to win laurels in the battle of life. Self-reliance is the light of life. No work is hard for you if you are self-reliant. Every thing can be possible if you apply yourself to it with a firm determination.

“In the workshop on the farm,
At the desk wherever you be.
From your future efforts boys,
Comes a nation's destiny.”
W. H. Daires.

Carry on the work which is in your hand until that is completed fully. The following lines inspire us to self-reliance.

“All that other man can do
Why with patience, should not you
Only keep this rule in view
Try, try again.” W. E. Hicken

Once the great warrior of world fame, Napoleon Bonaparte resolved to shove down the Alps when the mountain detained him in his march against Italy. Napoleon said, "If the Alps detain us they will be no more." And it was done accordingly. It was all due to his self-reliance. That is why he has become immortal in the history of the world.

Greatmen tread with confidence the path beset with difficulties. They have no lust for riches or greatness. They do their duty. Hence it sounds that they are indebted to duty. The man who passes through difficulties, makes himself firm, prosperous and successful.

Such a person faces every difficulty cheerfully. A good man is one who does not accept defeat from turmoils and does his work until it is absolutely complete. Every new success induces him to proceed further and every difficulty advises him to solve the problem. Difficulties are the steps to be raised towards the paradise of happiness. Thus difficulties are very active assistants of men.

Enthusiasm as well as self-reliance is a very important factor for man's progress.

They are the real friends of man. But it is only when man becomes successful, that he finds out that they are.

The other un-conquerable weapon is patience for overcoming the failures and difficulties of life. Tulsidas said—

“वीरज, धर्म, मित्र अरु नारी ।
आपत्ति काल परखिए चारी ॥”

Get on in your life gradually but never hasten you will achieve your target if you

follow this rule. Be self-dependent, never get your work done by any one which you can do yourself. "God helps those who help themselves." Have faith in God and do the best you can.

"Man acquires knowledge in two ways, one from others and the other from himself. But the other is good one", says Gibbon.

Verily it has been shown that the greatmen have been very punctual in their ways. They attached a very great importance to the utility of man. Hence time is really life given to man. Hence time is very precious. As Longfellow says—

“Art is long and time is fleeting,
And our hearts though stout and brave.
Still like muffled drums are beating,
Funeral marches to the grave.”

To lose time is to lose life. Time does not wait for you. It likes them all who like it. It is like a river because it has a perpetual flow. Thus it is indefinite just as the Almighty is.

We should make the best use of time. We should never be idle. We have to do a lot of work. And it is possible to do it, if we are punctual and make the best use of time.

Napoleon was defeated in the battle of Waterloo. Its cause was that the general of his army reached the battlefield only two minutes later and the fate of the battle was changed.

Thus we should do work at the appropriate time. It is important because it makes us important. Some one has rightly said, "One crowded hour of glorious life is worth an age without a name."

Try to do the work before you at once
But if, you neglect it you bear a long burden of
work for every tomorrow. Time which has
elapsed is never to come again. We, therefore
should not lose time, however, short it may
be. Work is worship.

The quality of a nation depends on the
quality of its citizens. People act as good or
bad citizens in a hundred silent ways. Good
citizenship means understanding, reasonable-
ness, Cooperation, kindness and a willingness
to live and let live. All these are essential
human qualities and a good citizen is, above
all, a good human being. Humanity means
to treat a man as man. A Sanskrit poet says—

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मर्त्य-लोके भुवि-भार-भूता,
मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

Our education, therefore, must undergo
a radical change. We should always realize
that we are humble unimportant little people
on this earth and try to help the world as
much as we can in our short time here. We
should have this idea that the whole nation
is a huge family.

Above all, diligence is life. Diligence
is the way towards prosperity. Your welfare,
your improvement, your greatness and your
fortune—all depend upon your diligence.
The true devotion for Him is to be diligent.
Be busy in your work, however mean it may

be in the common eye. Gandhiji says, “Those
who never participate in their work, are
thieves.” An empty mind is devil’s work-
shop. Idleness is a retreat for the coward
and the paralysed men.

“In works of labour or of skill
I would be busy too
For Satan finds some mischief still
For idle hands to do.”

—Issac watts.

People who do not work in life, always
come to tears. But if you adhere to work,
every work becomes easy just as to walk over
the roads which are thornless.

In the modern society theft, bribe, unfair
means, immorality indiscipline are rampant.
The main cause of this is that people do not
know the importance of diligence. Let us
remember the exhortation of late Pt. J.
L. Nehru—

“Labour, as rest is useless...आराम हराम है ।”
Napolean had also said, “Do or die.”

This should be the mission of our life.
But whatever I have told you is only a drop
in the ocean. We have to follow the ideals
of our greatmen, if we wish to be great and
good.

I live to learn their story,
Who’ve suffered for my sake.
To emulate their glory,
And follow in their wake.



Swami Ram Tirtha

—Vinay Kumar

“One of the great awakeners of modern India who gave a clarion call to her youth to dedicate themselves to her service and one who carried the message of Vedant across the seas. Swami Ram Tirtha is still a beacon light to us and a source of inspiration to our students.”—Editor

Swami Ram Tirtha or Tirtha Ram, as he was called in his childhood days, was born on 22nd of October 1873. His father Hira Nand lived in a village. When Swami Ram was a baby, his mother died.

At the age of five he joined the school. He was very intelligent and his memory was very good. When he was ten years of age, he left the primary school and joined the high school which was situated in another village. So he started living in the house of a friend of his father's. He respected his father's friend as his Guru. He wrote many letters during his college days.

He passed the entrance examination and got the first position. Then the Municipal Council gave him a scholarship. He passed F. A. and other many examinations and got the first place in all the examinations.

His total marks were the highest in the B.A. examination but he failed in English by only three marks. So he did not get the scholarship.

The next year he got a first class in B. A. and secured the first position. So he was given a scholarship. When he was 19 years old, he joined the Government College, Lahore, for his M. A. in Mathematics. He passed M. A. He was offered an appointment in the Government but he did not like to become an officer. He wanted to become a teacher.

When he was ten years old, his father got him married. He was very poor. So he used to take only one meal a day. He had only one shirt, one pair of pyjamas and a turban.

He also started private coaching for B.A. and F.A. students. He became a teacher in a college on Rs. 80 a month. He loved the Bhagavat Gita and often read it.

He studied the Upanishads in great detail. He spent most of his time in solitude. In summer he used to live in Hardwar and Rishikesh. He lived in a small house which was on the bank of the Ganga. He often put to himself questions

like. "Who am I? Am I this body? How was the world created? What is the soul and what is its power?" On the 25th of October he wrote a letter to his father telling him that he had cut himself off from the affairs of the world.

He went also to the Himalyas. He went to many countries. Wherever he went every body respected him. He loved all. He went to Japan and America also. When he went to Japan, he saw that everybody was doing his work. Every citizen loved his country and his fore-fathers very much. From Japan he went to America where he saw that everybody spoke the truth and none spoke a lie. On his way back from America, he went to many countries. He wanted his country to become as good and great as other countries were.

He loved his country as much as he loved the world. Swami Vivekananda

had given a call to the Indians, "You are lion-hearted, you are brave. Awake and arise." Ram Tirtha spread this message through his stories and speeches.

He always used to think how freedom could be achieved. So he worked hard. He told good stories to the Indians.

Ram Tirtha lived only for thirty three years. When he was about to die, he uttered these words—"Oh Death! Take away this body. I have no need for it. I am not aware of it. I can get many bodies. I can become a Divine Force and mingle with the Sun, the Moon and even with the Lightning or the Mountain streams. I am the Wind.....I came from across the mountains. I awoke the dead and the sleeping. I have lighted a few beautiful faces. I have wiped the tears from a few sad faces and now I leave. I am going, going away to the unknown from where I came."



MY ALMA MATER

—Rajesh Kumar

(X)

“The young writer pours out his very heart into this tribute which he pays to his alma mater, where he is passing the most impressionable part of his life.”

—Editor

Life, from childhood to old age is a continuous stream of problems. The school should prepare the pupil to solve them. Education enables the child to do things and thereby to shape his environment according to his heart's desire. Hence, there should be proper emphasis on the needs of the child and the requirements of society. The former provides the motivation and the latter the goals for the pupil's effort. The curriculum should be an epitome of human life, out of which grow our moral and social values. A good educational method should aim at imparting useful knowledge, promoting purposeful activity, providing meaningful experience, controlling emotional behaviour and building up lasting interests and healthy attitudes. These aims should be kept by schools and colleges before them. But in the whole of India, only a few institutions have such ideals. Our school is one of them.

Good things are found with good men or in a good atmosphere. Our school, Pt. Deen Dayal Upadhyay

Sanatan Dharma Vidyalaya is situated at Azadnagar in Kanpur near Allen Forest. It has been founded in the memory of Pt. Deen Dayal Upadhyaya who died in 1968. It was built by Mrs. Susheela Narendrajit Singh alias Buji. Azadnagar is a peaceful and calm locality as compared to other parts of the city. I have studied in other schools too but I did not like any other school so much as I do the present one.

My school has all the amenities of a modern school. It has a large building which wears a fair and impressive appearance like that of the crescent. Cleanliness is a speciality here. It has 28 spacious rooms, They are nicely furnished, airy and well ventilated. For specialised instruction in such subjects as Art, Science & Biology, there are separate rooms. For meetings and assemblies it has a splendid hall where there is a fine statue of Hanuman. There is a swimming tank behind it. There is a big field to play just near it. Also it has a hostel where many a boy lives and studies.

The teachers of my school are well

qualified. The teaching process is both intellectual and emotional and the two together lead to the volitional conduct. The first includes perception, observation, comprehension, analysis, comparison, description, discussion, evaluation, skill and abilities etc. The second includes expression of feelings, control of emotions, appreciation, formation of interests attitudes and noble ideals, and adoption of values such as love of parents, family and country, dignity of labour, and respect for humanity. The third includes solving problems and character. These are only suggestive and not meant to encroach upon the academic freedom of the teacher who is the best judge of the what and how of teaching. They would do well to remember what Bacon said, "Reading maketh a full man, conference a ready man and writing an exact man."

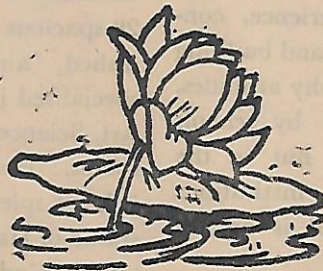
Our teachers are endowed with these abilities. So they are able to maintain discipline in the school. They do not make their students mere passive listeners to their boring lectures but make them

active seekers of knowledge. They do not use threatening rods but awaken a sense of self-discipline among students. This is why their students make all-round development.

Our principal is an educationist of note. Outwardly he is a hard task master and a disciplinarian but inwardly a well-wisher of everyone. Behind the glorious achievements of our school, his ability of planning and supervision is the main factor.

The aim of my school is to enable the students to prepare themselves for every field of life. With this aim they do some extra work. They go on tours, give examinations in general knowledge etc.

Our education system is in the melting pot today. We cannot prepare our students for good citizenship unless an earnest effort is made to reform the conditions of our existing schools. For this our school can serve as an illustrious example.



SUBHASH CHANDRA BOSE

-the Great Leader

—Rajesh Kumar Garg
(Class X)

“Netaji has blazed a trail of patriotic sacrifice, unparalleled in recent history. The more our ‘future hopes’ are inspired by his example the better it will be for our country”.

—Editor

Few leaders have stirred the hearts of their country men so much as Subhash Chandra Bose.

Subhash Chandra Bose was born in 1897 in Bengal. He was a revolutionary from his childhood. He was full of national pride and patriotic love. He had a great hatred for the British even when he was a student.

He was greatly influenced by the life and teachings of Swami Vivekanand. For a long time he was in search of the truth and a real guide or guru. Once while still a student, he fled to the Himalayas in quest of a guru but came back at the insistence of his parents. He had a very brilliant student career and easily passed the I. C. S. examination, then held in England, but at the call of his country he did not join the service.

He came in contact with Mahatma Gandhi. But could not accept his theory

of non-violence in toto. He wanted complete independence for his country by any means.

In 1928 there arose some differences in the Congress on the question of independence. Subhash and Jawahar stood for complete freedom. Gandhiji started the Civil Disobedience Movement in 1930. Subhash too took part in it.

He threw himself heart and soul into the struggle of India's freedom. He became the unquestioned leader of the youth of the country. He was elected Congress President in 1938, but next year when he was re-elected president of the Congress, Mahatma Gandhi did not like him to be the president. As a true patriot he did not care for office. He cared only for the service of the country. So he resigned from the presidentship.

During the second world war when he was kept in house arrest by the British,

he secretly dis-appeared and went to Germany to get help for freeing his country. He formed the Indian National Army and the Indian National Government whose commander-in-chief and President respectively he became. At the head of this army he invaded India to make her free, but unfortunately an air-crash put an end to his meteorlike career in 1944.

Netaji will always live in the hearts of Indians and all freedom-fighters. Longfellow says in his famous lines:

“Lives of great men all remind us
We can make our lives sublime,
And departing leave behind us
Foot-prints on the sands of time.”

Really a man who has not done anything for his country is good for nothing.

I like the life-history of this leader. He had the flame of patriotism always burning in his heart. He sacrificed his all at the altar of freedom. He is a national symbol of patriotism, sacrifice and liberty.



1. Deed is thy concern and not the fruit.

—BHAGVAT GEETA

X X X

2. Empty mind is the devil's workshop.

—PROVERBS

Our Pilgrimage to the land of Heroes — A Diary

—Anit Kumar
(X)

It was only last year when our heroic boys visited Rajasthan — the land of heroes and discovered many a hidden salient of our great Rajput history. Far from giving mere routine narration, this diary reveals something vital and inspiring.

—Editor

Our school has many aims. Like other schools, its aim is not simply to coach its boys for getting high positions in the Board's examinations, Its aim is to impart general education also to the boys so that they may be able to play their part as good citizens in future. With this object there has been a practice in our school to go to the different parts of our country every year.

This years we were very happy to hear that we were to go on a tour of Rajasthan. After making necessary preparations we came to school in the evening on 5th Oct., 1973. All of us stayed in the school for the night, as next morning our bus was to start quite early.

6th Oct., 73 :-

6th Oct., fortunately was the day of Vijaya Dashami and the first day of our tour. I can say that it was a golden day of my life, for I was going to the land of Sanga and Pratap. We were 53 boys, including myself, seven teachers and two

servants. After performing 'Havan' and taking our breakfast, we took our seats in the bus just at 7 a. m. The bus started in the midst of joyous cries of "Bharat Mata ki Jai, Pandit Deen Dayal ki Jai and Maharana Pratap ki Jai". As the bus sped on through the city of Kanpur and the way side towns and villages, we sang patriotic songs. Soon at about 9 a. m. we reached Auraiya.

Unfortunately, one of the springs, supporting the axle of the bus was broken and we had to wait there for its replacement for about three and a half hours. But we enjoyed all the time by saying humorous things to each other. After spending a lot of time at Auraiya, we got ready for leaving that place. Now it was growing dark and the birds were going in rows to their nests. We reached Firozabad at about 9 p.m. We had to halt for the night at the local Saraswati Shishu Mandir.

7th Oct., 73 :-

We got up this day at about 5-30 a.m. Navin's father, who was our host, took us

round his glass bangle factory and a neighbouring factory where we saw glass beads being manufactured. At about 8 a. m. we left Firozabad for Agra. Reaching there we visited Dayal Bagh, where we saw the famous samadhi of Radha Swami. It is a remarkable building, in the construction of which the highest art of sculpture and architecture, both ancient and modern has been used. It was started more than 50 years ago, and is still incomplete. When it will be complete, it may become a rival of Taj Mahal. Seeing this we went to Taj Mahal, which is considered one of the wonders of the world.

It is surrounded by big lawns and gardens, and in this setting, it looks very pleasant. After taking a few snaps of our friends against the back-ground of the beautiful Taj and its gardens, we left for Fatehpur Sikri. Its '*Buland Darwaja*' is the biggest gate in India or perhaps in the world. It is 134 feet high. After seeing this, we left for Bharatpur. In the way there were white sheets of water on both sides. On their banks, cranes were enjoying themselves. Recreating ourselves, we did not know when we reached Bharatpur. Here we met our teacher 'Shendeji', who had left Kanpur earlier to make proper arrangements for our stay at the different places of our journey. As it was evening, we went direct to the Birds' Sanctuary, a vast stretch of land overgrown with trees and shrubs and full of water in which all kinds of birds take shelter. As food was being cooked, we played kabaddi. Then having bathed ourselves, we took a hearty meal. Now it was getting dark, but it was decided

that instead of seeing the forts and palaces of Bharatpur and Dig, we should reach Jaipur that very night according to our programme. After all we had to make up for the time lost at Auraiya. So we left for Jaipur. Now all the boys were feeling sleepy and most of them slept while the bus sped fast to our destination. At about 2-0'clock we reached Jaipur, where we stayed at 'Adarsh Vidya-mandir'.

8th Oct., 73 :-

Next day, we went to Amer, the old capital of Man Singh about 12 K. M. from Jaipur. There we saw Kali Devi's temple, the fort, the old palaces and other historical places. Returning from Amer we took lunch and had some rest. Then we went about to see the beautiful city of Jaipur. First of all we saw its museum where many good and instructive things of the time of Akbar and Man Singh were still kept. Man Singh's sword was also kept in a case. Then we saw the zoo. It was divided into two parts. One consisted of birds and the other of animals. Both were very large. Then we went to see Jantar Mantar, which was an astronomical observatory, built by Raja Jai Singh, a descendant of Raja Man Singh. Now it was growing dark but still we did some shopping. After this, we returned to our resting place.

9th Oct., 73 :-

This day, we had a programme to take bath in Galtaji, a natural waterfall on the top of a hill outside Jaipur. After taking bath we went to see the temple of Sun God. It was situated on another

hill, but we climbed it with a great ardour. Now it was 2'oclock and we came back to Jaipur. At about 4'oclock we went to the bazaar. There we saw some historical places and buildings. We also tried to go to see Rajya Sabha but failed, because that evening we had a joint programme of the students of Adarsh Vidyamandir and ourselves. This programme consisted of a few songs and one act plays. It was followed by an exchange of courteous speeches by the two principals. During our stay of two days here, we had got acquainted with many students of this institution.

10th Oct., 73 :-

Soon after our morning ablutions, we were in the bus for Ajmer. In the way we saw Sambhar Lake and how its water was changed into salt. Then we again sat in the bus and proceeded to Ajmer. Our bus took a lot of time to reach there and as we reached there the clock struck 'five'. So we thought that we would go no where. But some boys went to see "Dhai Din ka Jhonpda". Others (I was also among them) sang songs. After that our respectable teacher Shri Om Shankarji told us a story from the 'Mahabharat'. Soon the boys who had gone came and we all had our dinner and went to bed.

11th Oct., 73 :-

Getting up early in the morning we left for the holy lake of Pushkar. Taking bath and enjoying natural sights surrounding it, we saw its temple and came back to Ajmer. In the way we were glad to see Rishi Dayanand Udyan. There we

had a glimpse of his life through pictures. Then we came back and enjoyed our lunch. It was 10'clock and we went to see a Jain Mandir. It was very beautiful. Many of us seeing that temple said that they would prefer it to the Taj. After this we left Ajmer and reached Bheelwada at about 10 p. m. and passed our night there.

12th Oct., 73 :-

Today we left Bheelwada for Udaipur. On the way, we stopped at Kakroli to see the temple of Dwarkadeeshji. We also saw Rai Sagar, a large lake. Here we entertained ourselves by feeding the fish with parched corn. Then we left for Nathadwara, where there is the famous Vaishnava shrine of Shri Nathji. After having a 'Darshan' of Shri Nathji, we left for Haldighati, where the famous battle between the great patriot Rana Pratap and the Mughals took place. Now it was growing dark and our bus had developed a defect. At one place the driver refused to go further. We however did not lose heart and leaving the bus there, we came down and began to walk on foot. Some of us took up the earth of this battle field, hallowed by the deeds of the brave Rana and applied it to their foreheads and as we went along we sang patriotic songs. It was night and it was possible that any beast might attack us at any time but we went along fearlessly. Thus we came to the memorial altar of Chetak, the brave and famous horse of the Rana. All of us sat down there for some time. Our teacher Shri Om Shankarji spoke on that historical event associated with Haldighati. In the meanwhile the bus had come and with cries

of Rana Pratap ki Jai and Chetak ki Jai which filled the whole valley. We entered the bus and returned to Nathadwara.

13th Oct., 73 :-

We had seen the arms of Man Singh in the Jaipur museum, but we had a great curiosity to see the weapons used by the great Pratap. With this great intention we left for Udaipur. In the way we saw 'Eklingshwar' the family - God of the Sisodias. After that we again set out for Udaipur. There, first of all we deposited our beddings in a Dharam Shala and just after taking lunch we went to see the weapons, armour and other belongings of Rana Pratap kept in a family museum of the Maharanas. We also saw Nehru Bagh where we enjoyed sitting in a small electric train. Then we visited the temple of Jagdish Mahadev.

14th Oct., 73 :-

Today we got ready and went to Fateh Sagar. There was a park, called Nehru Park. On an island in the midst of Fateh Sagar. We went there by boat, had our lunch there and played there for about half an hour. Then we went to Pratap Smarak, situated on a hill called Moti Mugri. It was really a very grand memorial of the great hero. An equestrian statue of the great Rana stands here in the midst of beautiful lawns. We bowed before the statue, put flowers before it, sat there for some time and came back to our resting place.

15th Oct., 73 :-

Early in the morning, we went to Jai Samund, a great lake which is 32 miles

from Udaipur. There we took bath and some of us jumped into it and enjoyed swimming.

After lunch at Udaipur, we proceeded at noon to Chittorgarh. We had been looking forward to visit this place of heroic deeds for a long time. It was about 10 miles from Udaipur. So when we reached there in the evening, we were so much exhausted that we could think of nothing but to have our meals and retire to bed for which arrangements were made at the 'Gurukul' of Swami Vritanand.

16th Oct., 73 :-

Today our ardour and excitement knew no bounds, for we were going to see the famous fort of Chittorgarh. After passing through the five gates and seeing the altars of Kalla, Jaimal, Phatta etc, we came to the fort where we were shown a few cannon of the times of the Rana. We saw a temple containing 27 idols and hence called 'Sat-bees-Deori'. We also saw the temple where Meera used to worship 'Krishna' - Seeing the holy place where Maharanis and women performed 'Johar', we came to the famous Vijai Stambh' erected by Rana Kumbha to mark his victory over the Muslim king of Malwa. Further on there was a tank called 'Gomukh Kund'. All of us enjoyed their bath in it. After seeing Padmini's temple and palace we came out of the fort and sat beside a waterfall to have our lunch. Then we returned to our resting place. After that we left Chittorgarh for Bundi. It was past mid-night when we found ourselves in Bundi. So we got down our beddings at a Dharamshala and fell fast asleep.

17th Oct., 73 :-

Next day after our morning ablutions, we got ready to start for Kota. Reaching there we got a bath in the Chambal, near a big dam. We saw a factory of tools. Then we left for Shivpuri. Though we spent half of the day sitting in the bus, yet we could not reach Shivpuri at the end of the day. So we stayed at Baranh. There we stayed at the rest house of their Municipal Chairman.

18th Oct., 73 :-

Getting up early in the morning, we got ready, took our breakfast, and left for Shivpuri. In the way, we took bath in Surya Kund. This was the same place where Lakshmanji come to leave Sitaji. Then we took lunch and proceeded on our onward journey. Reaching Shivpuri, we had a light refreshment. After which we saw the palace and gardens of the former rulers of Gwalior. Then we saw the statue of the brave patriot Tantya Tope. After

that we left for Jhansi, the last historical place of our tour. At about 8 p. m. we reached there and had a sound sleep at a Dharamshala.

19th Oct., 73 :-

Getting up early in the morning, we went to see the famous fort of Jhansi. In the way we saw the grand inspiring statue of the Rani of Jhansi, mounted on her horse with her adopted son Damodar bound at her back. Seeing it, we went to the fort. In the fort there were temples of Ganeshji and Shivji where Laxmibai used to perform Puja. There was also a secret way to Gwalior in it. The place, from where she riding on her horse - back had jumped down the fort, was also shown to us. Two historical cannon 'Kadak Biji' and 'Bhawani Shanker' were also kept there safely. Then we resumed our journey to Kanpur after an interesting, eventful and inspiring tour of fourteen days. At about 10 o'clock in the night we were in the Vidyalya campus.





In the foot-steps of the great Buddha

—Anit Kumar

Here is a day-to-day account of the tour that some of our students and teachers undertook this year. The party visited the various places associated with the wanderings of the great Buddha. Such tours are undoubtedly of great educative value.

—Editor

Though man is a mortal being, it is his nature to live free. He cannot live continuously in a place which is surrounded by walls on every side. So he finds ways to recreate himself. A tour to the various parts of the country provides entertainment as well as knowledge in a large measure. Thinking in this way, our teachers choose every year one or two states for our tour.

The very first year we went to Chitrakuta, situated on the borders of U. P. and M.P. Next year our steps were turned towards the Punjab, Haryana and Delhi. Later on we visited Rajasthan, the land of heroic deeds. This year, after a long discussion we were told that we would visit a land which though politically not ours, is culturally very much ours, viz, Nepal. It is a land abounding in natural beauty and lies in the lap of the mighty Himalayas, the great sentinel of mother India. So filled with such curiosity and enthusiasm we packed up our beddings, clothes and other necessary things on the eve of our departure, which was scheduled for the 22nd of Oct., 1974, and came to our institution.

22nd Oct, 74 :-

The 22nd of Oct, a day on which we left for Nepal, brought a new excitement in my life. At about 7 o'clock rending the sky with the loud cries of 'Pt. Deen Dayalji ki Jai, Bharat Mata ki Jai', we left the school campus by a bus. As soon as the bus gathered speed, our thrill was at its height. We sang, talked and enjoyed the sight of green fields on both sides of the road. In a few hours our bus stopped on the bank of the Triveni at Allahabad and as we enjoyed a bath in the Sangam, we saw the fort, said to have been built by the Mughals, standing quite near, but as we had no time, we did not enter it. Soon after we started for Chitrakuta and spent our first night at Janaki Mandir situated in 'Purani Lanka.'

23rd Oct., 74 :-

We left our beds at about 5 o'clock and after performing our morning ablutions we started on sight-seeing around Chitrakuta. First we visited Anusuiya Ashram, near which flows the river Mandakini. It was a beautiful spot, sur-

rounded by high cliffs and overgrown with tall trees and green vegetables. Here some of us took photographs of each other against the beautiful natural background. We then enjoyed a cool bath in the Mandakini and gave feed to the beautiful fish. After that we saw the 'Sphatik Shila'. It is said that on it Ram and Sita used to sit and just beside that huge throne, Lakshman watched them. Our respectable teacher Shri Om Shankarji told us that it was the same place where Jayant, son of Indra, trying to test the mighty Ram put on the form of a crow and struck Sita on her foot with his beak. Soon after we saw 'Janaki Kund', the place where Sita used to bathe. There was here a flour mill turned by water. Then after an audience with Swami Shalligram ji Maharaj, and having his blessings, we left Chitrakuta once again for Prayag but the green landscape, clear and green water, large trees, water-falls and huge mountains had left an indelible imprint on my mind. At about 9-30 p.m. we were at Allahabad and passed our night at Saraswati Shishu Mandir.

24th Oct., 74 :-

We got up early in the morning and soon, after we were ready, we left Shishu Mandir. First we saw 'Bal Udyan'. There we enjoyed ourselves for sometime with some juvenile sports such as merry-go-round, see-saw etc. Then we went to Azad Park where there is a statue of Chandra Sekhar Azad, the great revolutionary, who fought a duel with the British Police. We also saw the tree under which he breathed his last. After that we saw Anand Bhawan where Pandit Nehru spent his childhood. Then we

visited the Ashram of Bharadwaj, a holy saint of Ramayan fame. At about 5 p.m. we left for Varanasi, the city of Lord Shiva. Reaching there at about 9-30 p.m. we put up at Bharatiya Shishu Mandir situated in Sidh-Giri-Baagh.

25th Oct., 74 :-

After getting ready at about 7-30 a.m. we first saw Durga Mandir. It is said that it was built in the time of Jaichandra of Kanauj. Then we saw Tulai Manas Mandir which was built by a rich merchant named Ratan Lal Sureka in the memory of his young son who died at the age of 17 years. Dr. Radha Krishnan performed its opening ceremony on 29th of Nov. 1964. As soon as we entered it we saw a statue of Tulasidas reading the Ram-charit Manas. The lips of the statue moved so realistically that it appeared as if Tulasidas was present in flesh and blood. The whole of the Ram Charit Manas has been inscribed on the walls. Beautiful glimpses from the life of Ram were continuously shown with the help of electronics to the visitors. Then we went to see Sankat Mochan, the place where Tulasidas is said to have seen Hanuman.

After that we saw the world famous university which was the life work of the late Pandit Madan Mohan Malviya.

In the middle of it stands the temple of Vishwanath which is 252 feet high. The whole of Shrimad Bhagwad Gita along with some pictures is inscribed on its walls. There was a big Shivaling in the sanctum sanctorum of the temple. From the university we proceeded to the ancient temple of Vishwanath near

Gyanvapi. Just near it stood the mosque which had been built by Aurangzeb after breaking the original temple. The most important thing that we saw at Varanasi was that every temple was full of Shivlings. Now it was evening and so we went to the bazaar in order to enjoy the Dushera festival. There we watched many Dushera processions. Many interesting pageants were passing through the main street. Soon we came back to our resting place.

26th Oct., 74 :-

On this day our first destination was the temple of Bharat Mata. The main thing in this temple is that a huge relief map of India is made of marble slabs which number 756. Besides the valuable information about India in this temple, there are in the temple some other notable things about the universe. Some of them are :—

The Earth's diameter is $\frac{1}{108}$ of the Sun's.

The diameter of the Earth is 7926 miles and the diameter of the moon is 2160 miles. The distance between the earth and the moon is 2,38,000 miles etc.

After seeing this temple, we visited Sarnath, about 8 kms. from Varanasi. Sarnath is associated with the life of Buddha. It was here that he commenced the propagation of his Dharma. Here we saw the famous temple of the Buddha called Moo'gandha Kutu Vihara built by the Cylonese monk Dharampal. It contains beautiful murals depicting the whole life of Gautam Buddha. We also

saw another temple of Buddha made by the Chinese. After this we were shown the palace of Ram Nagar. In this we saw a clock, which is only one in the world for it tells date, day, minutes, hours, seconds, movement of planets etc. at the same time. Seeing Varanasi, we left for Sasaram i.e. we entered Bihar, another province of our country which has been brightened by the heroic deeds of Babu Kunwar Singh etc. There we slept at Saraswati Shishu Mandir.

27th Oct., 74 :-

At about 11 o'clock, we left this place for Buddha Gaya. First, we saw a Buddha temple built by the Thai followers of Buddha. The weight of the statue of Buddha, which stands in it, is 4 tons. The name of this temple is Batthai Bodha Mandir. The whole expenditure on its construction amounted to 22 lakhs of rupees. Then we saw a Buddha temple built by the Japanese. It was called Niponji Mandir. After that we were shown the Buddha museum containing a large number of complete and incomplete statues of Buddha. Then we saw a Buddha temple of the Tibetans. It contains a Dharam Chakra. Now we were in Mahabodhi temple which commemorates the site where the great Buddha attained enlightenment. It is 80 feet high. This place is called the cradle of Buddhism. Soon after we left this place for Gaya where we spent our night in a Gurudwara.

28th Oct., 74 :-

Getting up early in the morning we left for Rajgriha without taking bath.

At Rajgraha the sight of the hills covered with green grass and bushes stretching all around was beyond description. Taking our bath in the hot springs of the Brahma Kund, we left for Nalanda, which is famous in history for its one-time Buddhist University, but now only ruins are found of this University. The museum that stands there containing the relics of that period helps us to have some idea of the magnificent culture of those days. Seeing this we entered Patna, the capital of Bihar.

29th Oct , 74 :-

We first saw the birth place of Guru Gobind Singh, the tenth Guru of the Sikhs. The birth-place is now surrounded by high walls and according to the Sikh tradition, it is now called Gurudwara Hari Mandir. Later on enjoying the natural sights on both sides of the road, we reached Motihari at about 11-30 at night. Almost the whole day had been spent by us in the bus enjoying jokes and witticisms and singing patriotic songs.

30th Oct., 74 :-

This day we had to face many an obstacle. We left for Raxaul from where we had to cross over to Nepal. In the way, we met a bridge which was completely damaged. So our bus was unable to go farther. But without losing heart, we came back to Sugauli and there leaving our bus, we bought tickets for the train and reached Raxaul. When we were coming to Raxaul by train, I was very much delighted, for one of my ambitions had been fulfilled and that was to have a view of the Himalayas from close

quarters. The Himalayan range just before me was fully covered with snow. It was an exhilarating sight. At Raxaul, we hired some tongas for Birganj where we spent our night at a Dharamshala. We were now full of a new enthusiasm to see Kathmandu the very next day.

31st Oct., 74 :-

Now, after overcoming all the obstacles we were once again proceeding to our destination. At about 8 o'clock, we left Birganj for Kathmandu by engaging two other buses. After passing a plain area, we started climbing the Himalayas. The road had been made here by cutting down big boulders. After some time I was thrilled by the nearness of the Himalayas which could be seen now clearly and easily. On one side of the road there was the steep mountain and on the other side there was a deep ravine. A romantic thrill passed through me whenever on my side there happened to be a ravine. The sight of the waterfalls and their fast flow between white rocks was worth seeing. Everywhere there was green verdure. We were being carried to higher and higher heights. At one stage, we were 8170 feet high from the sea-level. After securing this height, we now started going down. At turns too we were very much thrilled with excitement, for if the driver made the slightest mistake, our bus would have been thrown hundreds of feet down the ravine. On the 31st of Oct., when the sun was setting in the Himalayas in all its splendour, we were so happy that our happiness beggars description for we had at last attained our destination.

1st of Nov., 74 :-

Now at Kathmandu we took a new bus for sight-seeing. We first went to Swayam Bhu Mandir which is perched at a considerable height. One can step into it only after negotiating 335 stairs. A number of lamps of pure ghee are continuously burning in this temple. It is said that here Buddha had produced a flame in a lotus, so it is called Swayam Bhu Mandir. Then we saw the national museum. In it various types of swords of olden times, the jaws of a whale, pictures of Nehru, Radhakrishnan, Victoria etc. were exhibited.

Then we saw the most ancient and holy temple of Pashupati Nath. In it a five-mouth Shivling has been established. In a small temple there are 584 Shivlings. If one takes only one round in it, it is said that he paves his way to attain salvation. In front of the main idol, there is a huge statue of Nandi. Then we saw Guhesvari temple.

In the evening we went to Balaju Baais Dhara. Various types of vegetables are found there. A huge statue of Lord Vishnu was seen lying on the floor. After this we returned to our resting place.

One thing that struck me most was that the Nepalese are proud of their culture, religion and language. I didn't notice sign boards or number-plates of cars in English as we find in India. Their patriotism is worth emulating.

2nd of Nov., 74 :-

After getting ready we left the capital of Nepal for Birganj. Once again, as our bus moved on, the beautiful scenery of

the Himalayas charmed us and while leaving the mountainous kingdom, we were very sorry. But at last we reached Birganj at about 6-30 p.m. Then again hiring tongas we came back to the railway station. But as ill luck would have it, some of us missed the train. I was also among them. So we had to pass our night at Raxaul and could join our companions next morning at Sugauli. We shall ever remain thankful to Shri Mohanji, a local R.S.S. worker, who left no stone unturned in making our entry into and exit from Nepal as comfortable as possible.

3rd of Nov., 74 :-

This was a day of continuous travel. Boarding our bus once again at Sugauli, we started for Gorakhpur, more than 300 kms. Enjoying meals and refreshments at some convenient places on the way and passing through dense forests and green fields, we reached Gorakhpur at about 2-30 in the night and had a sound sleep in the Saraswati Shishu Mandir.

4th of Nov., 74 :-

After getting ready at about 8 a. m., we first went to Gita press. The artistic paintings on its walls are worth seeing. Every employee of the place is hard-working. He considers his job a form of worship. There everyone was presented a Gita diary. Seeing this, we went to the temple of Baba Gorakshnath, the name from which this city has got its name. This was the last place to visit in Gorakhpur and after that we came back to the Shishu Mandir. Here the discipline of the boys impressed us very much. As we got ready to leave that place, we

were given a grand farewell. Treating us as their elder brothers, these small children played a touching tune on their band.

Leaving that place at about 3 p.m., we were on the way to Faizabad. We reached the birth place of Lord Rama at about 9-30 p. m. Everybody was now eager for the next day, when we were to start on the last lap of our advenferous tour.

5th of Nov., 74 :-

Having finished such an advenferous tour as appeared to be impossible before we set out, we first took bath in the holy Saryu as a taken of our thanks to God. Then we visited Hanuman Garhi and Kanak Bhawan. Seeing this, we came to the birth - place of Rama, where an 'Akhandā Kirtan' was going on.

Soon after we left for Lucknow, where for lack of time we could not stay or visit its important places and came back to our institution with a new excitement.

Thus we finished a tour packed with adventure, zeal and wonder. Thank God I was able to fulfill the vows which I had taken in my childhood. I had vowed to visit the Himalayas, Ayodhya, the birth-place of Shri Rama and to bathe in the Triveni.

This tour was full of beautiful natural sights such as green landscape, snow-capped mountains, dense forests, various kinds of flora and fauna and charming water-falls and now we shall wait for the next year, wondering which part of the country we shall visit.



Three Poems

—Anupam Sharma

Class X

“These juvenile attempts at versification are really laudable for a student of class Ten. May this interest of his grow into creative love for Poetry one day so as to win laurels for him and his alma mater.”

—Editor

First

*We should worship that God,
Who created this world,
Who created all of us,
Who is very pious,
Who made the sun and the moon.
We should worship that God,
Who made the chirping birds,
Who made the buds to bloom,
Who made the stars to twinkle,
Who spreads light,
Who turns round day and night,
We should worship that God.*

Second

*Our aim is not to read only,
Our aim is not to play,
Our aim is not to laugh,
Our aim is not to weep.
Our aim is not to sleep.
Our aim is not to give speech
Then what is our aim?
Our aim is to serve our country.*

Third

*Work is worship.
Don't worship the stones;
Worship your own work,
Because work is worship.
Do your work and be happy.
If you do not do your work,
You will repent afterwards.
So mind my words
And do — do your work.*

The problem of Unemployment

—Shri Ram Shankar Tripathi

During the rule of Britishers the problem of unemployment was not in its ugly form. Only the persons from well to do families could get English education and if they sought jobs, they were easily absorbed. But with the achievement of Independence, education spread widely. The Colleges and Universities became packed up with students. To provide employment to the vast number of graduates and post-graduates became impossible and so the problem of unemployment among us grew difficult.

A number of countries of the world are facing this problem. Even in United States of America, there are 4% people without employment.

In India, according to late Dr. Ram Manohar Lohia, there were seven crore persons without employment. According to the registers of employment exchanges of India, there were about seven lac graduates without any employment. In the beginning of 1966 there were 1.20 crore unemployed persons and at the end of the same year the number reached upto 2.30 crores.

Our planning commission expected to provide employment to two crores of people during four five year plan.

Still there would be a number of 1.50 crores of people left without any kind of employment.

There are mainly three types of unemployment in our country :—

1. Educated unemployment
2. Industrial unemployment
3. Agricultural unemployment

Of these the first type is the biggest.

The causes of unemployment are many. The first cause of this is the old fashioned means of agriculture. Our farmers do not use modern scientific ways. They do not use even good quality of seeds. They are without proper means of irrigation

The other cause of this is old fashioned and out-dated pattern of education. There is no industrial or technological bias in that pattern consequently graduates and post-graduates wander from place to place to seek a job. They purchase newspapers only to see the columns of vacancies, they apply, some are not called even for interview, but only the letter of regret frustrates their hopes.

The population of our country has increased beyond bounds without the proportionate increase in the number of jobs.

The low standard of living of our people is also responsible for this problem. Their needs are limited and hence they purchase little things in the market. Consequently less number of people will be benefited by producing the material for our daily needs.

The next cause of unemployment among the educated is the large scale industries. Heavy machines spare a number of persons from work. In industries machines do the work of thousands of persons handled by only one person. Hence a number of persons are without employment.

The capitalistic system of our society is also responsible for this problem. We are without money and hence we cannot have any business. The money of our county gets into the hands of a few persons.

The first remedy to remove this problem is the advancement in agricultural system. The government are trying their best in this matter. They have established factories for manure. They are trying to get every village electrified so that there may be a good number of tube wells. They are trying their best to provide the farmer with good seeds. Farmers are given training by government - servants. But due to the dishonest officials the progress is not satisfactory.

There must be some betterment in our educational system. We should be given industrial and technological education. The present-day education has

made students inactive and artificial. They avoid manual work and like light office work where they feel life. A village student after completing his education prefers staying in a city to settling down in his village. This mentality must be changed and dignity of labour must be recognised and admired.

We should try to check up the increasing number of population. Though the government is trying to control birth rate through family - planning, the result is tending to zero. We should take some effective steps in this regard. The standard of living of our people should be raised. Hence we shall need more things and the people producing those things will get employment.

Cottage industries should be established and developed to provide employment to the village dwellers. Our country abounds in villages. The only way to check unemployment is to spread a network of cottage industries in the villages where the villagers may acquire efficiency in them after their education.

In the end we have to remember that the problem of unemployment among the educated is a very serious affair. If it is not solved sooner, it may endanger our democratic pattern. Violant actions and disorderly behaviour may endanger the country's freedom. Frustrated hopes and starved stomachs may lead to Naxalism. The country may once again plunge into the mire of violence and agitation.

गुरुजन, जो सतत सचेष्ट हैं

- | | | |
|-----|--|------------------|
| १. | श्री चन्द्रपाल सिंह, एम० ए०, बी० टी०, साहित्यरत्न, | प्राचार्य |
| २. | „ शन्तनु रघुनाथ शेंडे, एम० ए०, बी० एड० | उप प्राचार्य |
| ३. | „ ओम शंकर, एम० ए०, बी० एड० | आचार्य |
| ४. | „ प्रयाग सिंह, एम० एस० सी० (प्र०) बी० एड० | „ |
| ५. | „ प्रकाश नारायण बाजपेयी, एम० एस-सी०, बी० एड० | „ |
| ६. | „ राजकुमार दीक्षित, एम० ए०, (प्र०), साहित्याचार्य, शास्त्री, बी० एड० | „ |
| ७. | „ आनन्द प्रसाद वर्मा, आई० जी० डी० (बाम्बे) | „ |
| ८. | „ हेमन्त प्रसाद दीक्षित, एम० ए०, बी० एड० | „ |
| ९. | „ योगेन्द्रपाल कोहली, एम० एस-सी०, | „ |
| १०. | „ राम शंकर त्रिपाठी, बी० ए०, बी० एड० | „ |
| ११. | „ जगदीश प्रसाद गुप्त, एम० एस-सी०, बी० एड० | „ |
| १२. | „ गोविन्द नारायण मिश्र, एम० ए०, बी० एड० | „ |
| २३. | „ रमाकान्त अवस्थी, एम० ए०, बी० एड० | „ |
| १४. | „ महेश चन्द्र श्रीवास्तव, बी० एस-सी०, बी० एड० | „ |
| १५. | „ महेश प्रसाद चड्ढा, बी० एस-सी०, बी० एड० | „ |
| १६. | „ रमेश चन्द्र अवस्थी, बी० काम०, एम० ए०, | कार्यालय-अधीक्षक |
| १७. | „ डॉ० के० श्रीधरन् | चिकित्सक |



दशम कक्षा के परीक्षार्थी

जो प्रथम बार अपने कर्तृत्व से विद्यालय का मुख उज्ज्वल करने के लिये कृत-संकल्प हैं :—

नाम	अनुक्रमाङ्क	नाम	अनुक्रमाङ्क
१. अजय अग्रवाल	४८८७६९	१७. राजीव वर्मा	४८८७८५
२. अजय तिवारी	" ७०	१८. राजेश श्रीवास्तव	" ८६
३. अजीत पाण्डेय	" ७१	१९. राजेश खुराना	" ८७
४. अनित कुमार	" ७२	२०. राजेश गर्ग	" ८८
५. अनुपम शर्मा	" ७३	२१. राजेश पाण्डेय	" ८९
६. अश्विनी अग्रवाल	" ७४	२२. राजेश मल्होत्रा (अस्वस्थ)	" ९०
७. अशोक शर्मा	" ७५	२३. ललित अवस्थी	" ९१
८. आनन्द मिश्र	" ७६	२४. विजय गोयल	" ९२
९. चाँद सेठ	" ७७	२५. विनय कुमार	" ९३
१०. जितेन्द्र कुमार	" ७८	२६. विपिन मेहता	" ९४
११. दुर्गेश कुमार	" ७९	२७. विमल आनन्द	" ९५
१२. नवीनचन्द्र गुप्त	" ८०	२८. शशि शर्मा	" ९६
१३. प्रवीण सचदेव	" ८१	२९. सुरेश अग्रवाल	" ९७
१४. रवीश अग्रवाल	" ८२	३०. सुरेश गुप्त	" ९८
१५. भरत सिंह	" ८३	३१. संजय खण्डेलवाल	" ९९
१६. राघवेन्द्र सिंह	" ८४	X X X	X



दशम कक्षा का विदाई - समारोह

१३ मार्च १९७५ अपराह्न ५.३०



कुर्सियों पर बैठे हुये (बायें से दायें) :-

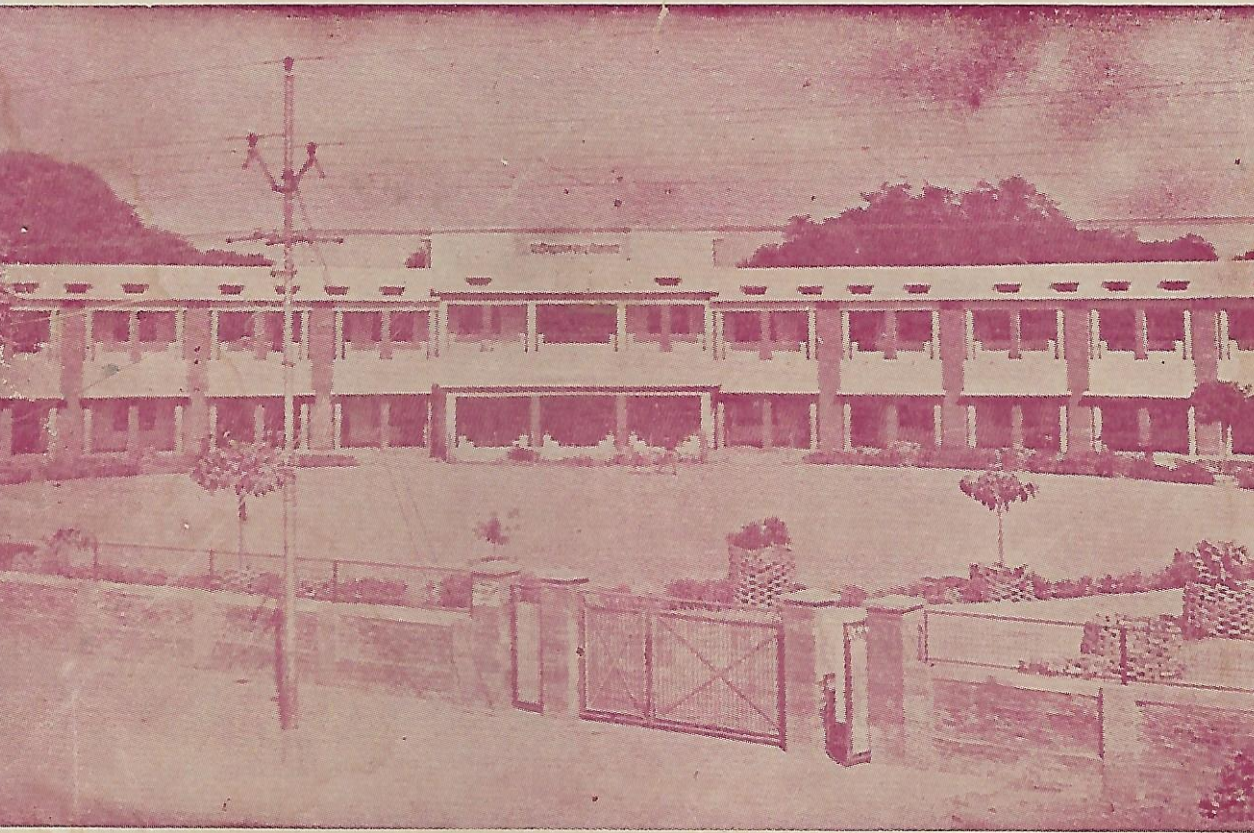
सर्वश्री रसाकान्त अवस्थी, योगेन्द्र पाल कोहली, जगदीश प्रसाद गुप्त, महेरा प्रसाद चड्ढा, राजकुमार दीक्षित, हेमन्त कुमार दीक्षित, शन्तनु रघुनाथ शेंडे, चन्द्रपाल सिंह (प्राचार्य), ओम शङ्कर, प्रकाश नारायण बाजपेयी, राम शङ्कर त्रिपाठी, आनन्द प्रसाद वर्मा, महेरा चन्द्र श्रीवास्तव, रमेश चन्द्र अवस्थी (कार्यालय-अधीक्षक), प्रयाग सिंह ।

खड़े हुये (प्रथम पंक्ति) बायें से दायें :-

सर्व चि० सुरेश गुप्त, राजीव वर्मा, विमल आनन्द, शशि शर्मा, विपिन मेहता, विनय कुमार, अशोक शर्मा, सुरेश अप्पवाल अजीत पाण्डेय, चाँद सेठ, विजय गीयल, भरत सिंह, जितेन्द्र कुमार, अजय निवारी, राजेश पाण्डेय, रामाधार शुक्ल (रक्षक) ।

खड़े हुये (द्वितीय पंक्ति) बायें से दायें :-

राम भजन (भोजनालय-कर्मचारी), सर्व चि० राजेश श्रीवास्तव, राजेश गर्ग संजय खंडेलवाल, अजय अप्पवाल, प्रवीण सचदेव, राघवेंद्र कुमार, ललित अवस्थी, अश्विनी अप्पवाल, नवीन चन्द्र गुप्त, अनित कुमार, राजेश खुराना, दुर्गा कुमार, रवीश कुमार अप्पवाल, आनन्द मिश्र, श्यामलाल (कार्यालय-कर्म०)



विद्यालय - भवन



Phone : 62727